

किन्तु सासादन आदि गुणस्थानोमे बन्धका निरोध इस प्रकार है - मिथ्यात्व, नपंसकवेद, परकायु, नरकगति, एकेन्द्रियजाति, दो इन्द्रियजाति, तेइन्द्रियजाति, चौइन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानपूर्वीख्, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक, साधारणशरीरनाम, ये सोलह प्रकृतिर्या मिथ्यात्वके साथ बँध्ती है, अतः मिथ्यात्वके चले जानेपर सासादन आदि गुणस्थानोमे उनका संवर होता है। निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृदिध्व अनन्तानुबगन्धी कषाय, स्त्रीवेद, तिर्यचायु, तिर्यचगति, मध्यके चार संस्थान, चार संहनन, तिर्थचगतिप्रायोग्यानपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दःस्वर, अनादेय, नीचगोत्र इन प्रकृतियोंके बन्धका कारण अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे होनेवाला असंयम है। अतः एकेन्द्रियसे लेकर सांसादन गुणस्थान पर्यन्त जीव इनके बन्धक है। आगे उनका बन्ध नहीं होता। अप्रत्याख्यानावरण कषाय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगा-पांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानपूर्वी, इन दस प्रकृतियोंके बन्धका कारण अप्रत्याख्, यानावरणं कषायके उदयसे होनेवाला असंयम है। अतः एकेन्द्रियसे लेकर

६ सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक बंधवोच्छिदण्णा।

दुगतीसचदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को ॥-गो. कर्म., गा. ९४।

असंयम सम्यग्दृष्टि गुणस्थान पर्यन्तके जीव उनके बन्धक है। आगे उनका बन्ध नहीं होता। तीसरे गुणस्थानमे आयु कर्मका बन्ध नहीं होता। प्रत्याख्यानावरण कषायका आस्त्रव प्रत्याख्यानावरण कषायके उदयसे होनेवाले असंयमके कारण होता है। आगे उनका संवार होता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभं, अयशःकीर्ति ये छह प्रकृतिर्या प्रमादके कारण बँध्ती है, अतः प्रमत्तसंयत गुणस्थानसे आगे उनका संवर होता है। देवायुके बन्धका प्रारम्भ प्रमादके ही कारण होता है किन्तु प्रमत्त गुणस्थानके निकटवर्ती अप्रमत्त गुणस्थानमे भी उसका बन्ध होता है। आगे उसका संवर होता है। संज्वलन कषायके निमित्तसे जिन प्रकृतियोंका आस्त्रव होता है उनका उसके अस्वाभाव संवर हो जाता है। वह संज्वलन कषाय तीव्र, मध्यम और जधन्य रू पसे तीन गुणस्थानोमे होती है। अपूर्वकरणके आदिमे निद्रा और प्रचला, मध्यमे देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्त्रसंस्थान, वैक्रियिक शरीरागोपांग, आहारक शरीरंगोपांग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देवगति प्रायोग्यानपूर्वी, अगुरु लघु, उपधात, परधात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्तक, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभं, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थकर, अन्तमे हास्य, रति, भय, जुगुप्सा। तीव्र संज्वलन कषायसे इनका आस्त्रव होता है अतः अपने-अपने भागसे आगे उनका संवर होता है। अनवृत्ति बादरसाम्पराय गुणस्थानके प्रथम समयसे लेकर संख्यात भागोतक पुरु षवेद और संज्वलन क्रोधका, मध्येके संख्यात भागो तक संज्वलन मान संज्वलन मायाका और अन्त समयतक संज्वलन लोभका आस्त्रव होता है। आगे उनका संवर है। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यशः- कीर्ति, उच्चगोत्र, पाँच अन्तराय ये सोलह प्रकृतिर्या मन्द कषायमे भी सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानतक बँधती है। आगे उनका संवर है। योगके निमित्तसे केवल एक सातावेदनीय ही बँधता है अतः उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय और सयोग केवलीमे उसका बन्ध होता है। अयोग केवलीके संवर होता है।

यहाँ यह शका होती है कि संवर तो शुद्धोपयोग रूप होता है । और मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोमे आपने अशुभ, शुभं और शुद्ध तीन उपयोग कहे हैं तब यहाँ शुद्धोपयोग कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर यह है कि शुद्धनिश्चयरूप शुद्धोपयोगमे शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव अपना आत्मा ध्येय (ध्यान कराने योग्य) होता है । इसलिए शुद्ध ध्येय होनेसे, शुद्धका उसीको भावसंवर कहते हैं । भावसंवर रूप यह शुद्धोपयोग संसारके कारण मिथ्यात्व राग आदिअशुद्ध पर्यायकी तरह अशुद्ध नहीं होता, और न शुद्धोपयोगके फलरूप केवलज्ञान लक्षण शुद्ध पर्यायकी तरह शुद्ध ही होता है । किन्तु उन शुद्ध और अशुद्ध पर्यायोसे विलक्षण एक तीसरी अवस्था कही जाती है जो शुद्धात्माकी अनुभूतिरूप निश्चयरन्तत्रयात्मक होनेसे मोक्षका कारण होती है तथा एक देश व्यक्तिरूप और एक देश निरावरण होती है [द्रव्य सं. टी., गा. ३४] । अतः जहाँ जितने अंशमे विशुद्धि है उतने अंशमे वंर माना है ।

नित्य, अत्यन्त निर्मल, स्व और पर पदार्थोंके प्राकरश्नमे समर्थ, चिदानन्दात्मक परमात्माकी भावनासे प्रकट हुआ, शुद्ध स्वात्मकानुभूतिरूप निश्चयरन्तत्रयत्माक धर्म अमृतके समुद्रके समान है । उसका अवगाहन करनेवालोकेद्वारा उर्दीण रसका लेश भी उसमे स्थित

कथमपि भवकक्ष जाज्वलदूदुःखदाव-

ज्वलनमशरणो ना बम्भ्रमन प्राप्य तीरम ।

श्रितबहुविधसत्त्व धर्मपीयूषसिन्धो-

रसलवमपि मज्जत्कीर्णमृध्नोति विन्दन ॥१११॥

ऋध्नोतिज्ञानसयमादिना प्रहयादबले (-लौज) वीर्यादिना च वर्धते । विन्दन-लभमानः ॥१११॥

अथ धर्माचार्योव्युत्पादितमतिः सडत्यागादिना स्वात्मानं तदवे भवान्तरेषु वा निःसंसारं करोतीत्याह-

त्यक्त्वा सडं सुधीः साम्यसमभ्यासवशाद ध्रुवम ।

समाधि मरणे लब्ध्वा हन्त्यल्पयति वा भवम ॥११२॥

समाधि रत्नत्रयैकाग्रताम । हन्ति चरमदेह इति शेषः । तथा चोक्तम-

ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण त्रुटयन्मोहस्य योगिनः ।

चरमाडस्य मुक्तिः स्यात्तदैवान्यस्य च क्रमात् ॥११२॥

अथाभेदसमाधिमहिमानमभिष्टोत्ति-

अयमात्मात्मनात्मानमात्मन्यात्मन आत्मने ।

समादधानो हि परा विशुद्धि प्रतिपद्यते ॥११३॥

परां विशुद्धि - धातिकर्मक्षयलक्षणा सकलकर्मक्षयणलक्षणा वा ॥११३॥

उपासक वर्गकेअनुग्रहकेलिए होता है, यह कहते है-

जिसमें दुःखरू पी दावानल प्रज्वलित हे ऐसे संसारू पी जंगलमे भटकता हुआ अशरण मनुष्य कसी तरह घर्मरू पी अमृतके समुद्रके तीरको प्राप्त होता है जहाँ निकट भव्य आदि अनेक प्राणी आश्रय लिये हुए है । और धर्मरू पी अमृतके समुद्रमे स्नान करनेवाले मुमुक्षु घटमान योगियोकेद्वारा प्रकट किये गये रसके लेशको भी प्रज्ञपत करके ज्ञान संयम आदिके द्वारा तथा आहाद, ओज, बलवीर्य आदिके द्वारा समृद्ध होता है ॥१११॥

धर्माचार्यके द्वारा प्रबुद्ध किया गया मनुष्य परिग्रह त्याग आदि करके उसी भवमे या भवान्तरमे अपनेको संसारसे मुक्त करता है, यह कहते है--

परिग्रहको त्यागकर सामायिककी निरन्तर भावनाके बलसे, मरते समय अवश्य ही रन्तत्रयकी एकाग्रतारू प समाधिको प्राप्त करके, प्रमाण नय-निक्षेप और अनुयोगोकेद्वारा व्युत्पन्न हुआ चरमशरीरी भव्य संसारका नाश करता है । यदि वह अचरमशरीरी होता है उसी भवसे मोक्ष जानेवाला नहीं होता तो संसारको अल्प करता है, उसे घटाता है ॥११२॥

अभेद समाधिकी महिमाकी प्रशसा करते है-

स्वसंवेदनके द्वारा अपना साक्षात्कार करनेवाला यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वरू प आत्माके लिए, इन्द्रिय मनसे उत्पन्न होनेवाले क्षायोपशिमिक ज्ञानरू प आत्मस्वरू पसे हटकर, निर्विकल्प स्वात्माने, स्वसंवेदनरू प स्वात्माके द्वारा, श्पुद्धचिदानन्दमय आत्मका ध्यान करते हुए घातिकर्मोके क्षयस्वरू प या समस्त कर्मो का क्षयस्वरू प उत्कृष्ट विशुद्धिको प्राप्त करता है ॥११३॥

अथ ध्यानस्य सामग्रीक्रम साक्षादसाक्षाच्च फल कथयति-

इष्टानिष्टाथमोहादिच्चेदाच्चेतः स्थिरं ततः ।

ध्यानं रत्नत्रयं तस्मात्तस्मान्मोक्षस्ततः सुखम् ॥११४॥

मोहादिः- अष्टानिष्टार्थयोः स्वरू पानवबोधो मोहः । इष्टे प्रीती रागः । अनिष्टे चाप्रीतिर्द्वेषः । ततः स्थिराच्चेतसः । इति भद्रम् ॥११४॥

इत्याशाधरदृध्याया धर्माभृतपत्रिकाया ज्ञानदीपिकापरसंज्ञायां प्रथमोध्यायः ।

अन्नाध्याये ग्रन्थप्रमाणे द्वादशोत्तराणि च चत्वारि शतानि । अडकतः ॥४१२॥

विशेषार्थ- लुपर समाधिका अर्थ रत्नत्रयकी एकाग्रता कहा है । यहाँ उसे ही स्पष्ट किया है । यहाँ बतलाया है कि छहो कारक आत्मस्वरू प जब होते हैं तभी रत्नत्रयकी एकाग्रता होती है और तभी मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥११३॥

आगे ध्यानकी सामग्रका क्रम और उससे होनेवाले साक्षात या परम्परा फलको कहते हैं-

इष्ट और अनिष्ट पदार्थामे मोह-राग-द्वेषको नष्ट करनेसे चित्त स्थिर होता है, चित्त स्थिर होनेसे ध्यान होता है । ध्यानसे रत्नत्रयकी प्राप्ति होती है । रत्नत्रयसे मोक्ष होता है । मोक्षसे सुख होता है ॥११४॥

विशेषार्थ- द्रव्यसंग्रहके अन्तमे कहा है की ध्यानमे निश्चय मोक्षमार्ग और व्यवहार मोक्षमार्ग दोनो ही प्राप्त होते हैं इसलिए ध्यानाभ्यास करना चाहिए । किन्तु चित्त स्थिर हुए बिना ध्यान होना सम्भव नहीं है अतः ध्यान के लिए चित्तका स्थिर होना जरूरी है । चित्त स्थिर करनेके लिए अष्ट विषयोसे राग और अनिष्ट विषयोसे द्वेष हटाना चाहिए । ये राग-द्वेषका स्वरू प कहते हैं-शुद्ध आत्मा आदि तत्त्वोमे मिथ्या अभिप्रायका जनक दर्शनमोह है उसीका भेद मिथ्यात्व है जो अनन्त संसारका कारण है । अध्यात्ममे मोह दर्शनमोहको ही कहा है और रागद्वेष चारित्रमोह है अर्थात् रागद्वेष है, क्योंकि कषायोमे क्रोधमान तो द्वेष रू प है और माया लोभ रागरू प है । नोकषायोमे स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति तो रागरू प है, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा द्वेषरू प है । यह प्रश्न हुआ करता है कि रागद्वेष कर्मसे पैदा होते हैं या जीवसे पैदा होते हैं । इसका उत्तर यह है कि जैसे पुत्र स्त्री और पुरुष दोनो के संयोगसे पैदा होता है वैसे ही रागद्वेष जीव और कर्मके संयोग से उत्पन्न होते हैं । किन्तु नयविवक्षासे एक देश शुद्धनिश्चयनसे कर्मजनित है और अशुद्ध निश्चयनसे, जो शुद्धनिश्चयकी अपेक्षा व्यवहार ही है, जीव-जनित है । इनसे बचना चाहिए तब धर्ममे मन लग सकता है । [-द्रव्य सं. टी., गा.] ॥११४॥

इस प्रकार आशाधर रचित धर्माभूतके न्तर्गत अनगार धर्माभूतकी स्वोपज्ञ टीकानुसारी हिन्दी टीकामे धर्मस्वरू प निरूपण नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।

द्वितीय अध्याय

इह हि- घृद्योतोद्यवनिर्वाहसिद्धिनिस्तरणैर्भजन ।

भव्यो मुक्तिपथं भाक्त साधयत्येव वास्तवम् ॥३॥

वास्तवमिति पूर्वोक्त । तन्नादौ सम्यक्तत्वारार्थनाप्रक्रमे मुमुक्षूणा स्वसामग्रीतः समुदभूतमपि सम्यग्दर्शनमासन्नभव्यस्य सिद्धिसंपादनार्थमारोहत्प्रकर्ष चारित्रमपेक्षत इत्याह-

आसंसारविसारिणोन्धतमसान्मिथ्याभिमानावया-

च्चयुत्वा कालबलान्निमीलितभवानन्त्यं पुनस्तदबलात् ।

मीलित्वा पुनरु दगतेन तदपक्षेपादविद्याच्छिदा,

सिद्धये कस्यचिदुच्छयत स्वमहसा वृतं सुहयन्मृग्यते ॥१॥

अन्धतमसात-द्रव्यमिथ्यात्वात् पक्षे दुर्णयविलासितात् मिथ्याभिमानान्वयात् (-विपरितलक्षणात् कालादिलब्धयवष्टम्भात्) विपरीताभिनिवेशलक्षणभावमिथ्यात्वेन पक्षे दुरभिनिवेशावष्टम्भरूपायुक्तिप्रणीहडकारेण चानुगम्यमानात् । कालबलात्-उपलक्षणात् कालादिलब्धयवष्टम्भात् पक्षे कायशिसिद्धयनुकूलसमयसामार्थ्यात् । निमीलितभवानन्त्य-तिरस्कृतानन्तसंसार यथा भवति । तथा चोत्कम-

घलब्धमुहूर्तमपि ये परिवर्जयन्ति सम्यक्त्वरत्नमनवद्यपदप्रदायि

भ्राम्यन्ति तेषु न चिरं भववारिराशौ तदभिभ्रतां चिरतरं किमिहास्ति वाच्यम् ॥३॥

[अमित. श्रा. २।८६]

पहले कहा था कि उद्योत, उद्यव, निर्वा, सिद्धि और निस्तरणके द्वारा निश्चय मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है । यहाँ चार आराधनाओमेसे सम्यक्त्व आराधनाका प्रकरण है । उसको प्रारम्भ करते हुए कहते हैं कि मुमुक्षु जीवोके अपनी सामग्रीसे उत्पन्न हुआ भी समयदर्शन निकट भव्यकी मुक्तिके लिए उत्तरोत्तर उन्नतिशील चारित्रकी अपेक्षा करता है--

समस्त संसारमे मिथ्या अभिप्रायके फैलानेवालेपर विपरीत अभिप्राय रूप भाव मिथ्यात्व जिसका अनुगमन करता है ऐसे द्रव्य मिथ्यात्वसे किसी प्रकार कालादिलब्धिके बलसे छूटकर अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य संसारकी अनन्तताका अन्त करके अपने संसारको सान्त बनाता है । पुनः उसी अनादिकालसे चले आते हुए मिथ्यात्वकी शक्तिसे उसका सम्यग्दर्शन लुप्त हो जाता है । पुनः किसी निकट भव्यके उस मिथ्यात्वरूपी अन्धकारका विनाश होनेसे कुमति, कुश्रुत और कुअवधिरूप अथवा मोह-संशय और विपर्ययरूप अज्ञानका छेदन करनेवाले सम्यग्दर्शनका उदय होता है । किन्तु सम्यग्दर्शनरूप अपने तेजसे उँचा उठता हुआ निकट भव्य स्वात्माकी उपलब्धिके लिए अपने मित्र चारित्रकी अपेक्षा करता है ॥१॥

तदबलात-अनाद्यनुबद्धमिथ्यात्वासामर्थ्यात् । भव्यः खलु अनादिमिथ्यादृष्टिः कालादिलब्धयान्त
मुहूर्तमोपशमिकसम्यक्त्वमनुगम्य पुनस्ततः प्रच्युत्य नियमेन मिथ्यात्वमाविशति । तदुत्कम-

घनिशीथ वासरस्येव निर्मलस्य मलीमसम ।

पश्चादायाति मिथ्यात्वं सम्यक्त्वस्यास्य निश्चितम् ॥ [अमित. श्रा. २।४२]

तदपक्षपात-उथाविधज्ञच्च तमसः प्रध्वंसात् । अविद्याच्चिदा-अविद्यां कुमतिकुश्रुतविभङ्गस्वभाव
मोह-संयश-विपर्ययरु प वा अज्ञानत्रय छिनत्ति सम्यग्मत्यादिरु पता प्रापयतीत्यविद्याछित तेन । सिद्धयै-
स्वात्मोपलब्धये आत्मोत्कर्षपराकषसाधनार्थं च । कस्यचित-आसन्नभव्य (स्य) जिगीषोश्च । स्वमहसा-
सम्यग्दर्शनलक्षणेत् प्रतापरु पेण चव निजतेजसा ॥१॥

विशषार्थ-संसारि जीव अनादिकालसे मिथ्यात्वके कारण अपने स्वरु पको न जानकर नाना
गतियोमे भटकता फिरता है । यह मिथ्यात्व भाव और द्रव्यके भेदसे दो प्रकारका है । जीवके जो
मिथ्यात्वरु प भाव है वह भाव मिथ्यात्व है, और जो दर्शन मोहनीय कर्मका भेद मिथ्यात्व मोहनीय है उस
रु प परिणत पौदगलिक कर्म द्रव्य मिथ्यात्व है । द्रव्य मिथ्यात्वके उदयमे भाव मिथ्यात्व होता है अतः भाव
मिथ्यात्व द्रव्य मिथ्यात्वका अनुगामी है । तथा मिथ्यात्वके उदयमे ही नवीन मिथ्यात्व कर्मका बन्ध होता है
। इस तरह इसकी परम्परा चलती है । जब पाँच लब्धियोका लाभ होता है । इस तरह इसकी परम्परा
चलती आती है । जब पाँच लघियोका लाभ होता है तब भव्य पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवको एक अन्तर्मुहूर्तके
लिए सम्यग्दर्शनका लाभ होता है । जब जीवके संसार परिभ्रमणका काल अर्धपुदगल परावर्त शेष रहता है
तब वह प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके योग्य होता है इसे काललब्धि कहते हैं । उसे सदगुरु के द्वारा
तत्त्वोका उपदेश मिलना देशनालब्धि और विशुद्ध परिणाम होना विशुद्धिलब्धि है । विशुद्ध परिणाम
होनेपर पाप प्रकृतियोमे स्थिति अनुभंग घटता है, प्रशस्त प्रकृतियोका अनुभंग बढ़ता है । इस तरह प्रति
समय अनन्तगुणी विशुद्धि होते हुए जब कर्मोकी स्थिति अन्तःकाटाकोटी सागर प्रमाण बाँधता है तब
क्रमसे अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रू प परिणामोको करता है । यह करणलब्धि है ।
अनिवृत्तिकरणके अन्तर्गत अन्तरकरण करता है । उसमे अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्वका अपवर्तन
करता है उससे मिथ्यात्व कर्म मिथ्यात्व, सम्यकमिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति इन तीन रू प हो जाता है
अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व रू प परिणामोसे सत्तामे स्थित मिथ्यात्व कर्मका द्रव्य तीन रू प हो जाता है ।
तब अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्व, सम्यकमिथ्यत्व और सम्यकप्रकृति इन सात
प्रकृतियोका उपशम करके सम्यक्त्वको प्राप्त करता है । इसकी स्थिती एक अन्तर्मुहूर्तकी होती है अतः
पुनः मिथ्यात्वमे चला जाता है । मगर एक बार भी सम्यक्त्वके होनेस अनन्त संसार सान्त हे जाता है ।
कहा भी है कि जैसे निर्मल दिनके पीछे अवश्य मलिन रात्रि आती है, वैसे ही इस प्रथमोपशम सम्यक्त्वके
पीछे अवश्य मिथ्यात्व आता है । एक बार सम्यक्त्व छूटकर पुनः हो जाता है किन्तु मुक्तिके लिए
चारित्रकी अपेक्षा करता है । चारित्रके बिना अकेले सम्यक्त्वसे मुक्तिलाभ नहीं हो सकता ॥ १ ॥

९ सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिका कथन विस्तारसे जाननेके लिए षट्खण्डागम पु. ६ के अन्तर्गत सम्यक्त्वोत्पत्तिचूलिका देखे ।

अथ मिथ्यात्वस्योपस्कारिका सामग्री प्रतिनिवर्तयितु मुमुक्षून व्यापारयति-

दवयन्तु सदा सन्तस्तां द्रव्यादिचतुष्टयीम् ।

पुंसां दुर्गतिसर्गे या मोहारेः कुलदेवता ॥ २ ॥

दवयन्तु-दूरीकुर्वन्तु । द्रव्यादिचतुष्टयी-द्रव्यक्षेत्राकालभावान् । तत्र द्रव्यं परसमयप्रतिमादि, क्षेत्र तदायतनतीर्थादि, कालः संक्रान्तिग्रहणादिः, भावः शडकादिः । दुर्गतिसर्गे-मिथ्याज्ञानस्य नरकादिगतेर्वा पक्षे दारिद्र्यस्य सर्गे निर्माणे ॥ २ ॥

अथ मिथ्यात्वस्य कारणं लक्षणं चोपलक्षयति-

मिथ्यात्वकर्मपाकेन जीवो मिथ्यात्वमृच्छति ।

स्वादुं पित्तज्वरेणैव येन धर्मं न रोचते ॥ ३ ॥

पावकः (पाकः)-स्वफलदानायोदभूतिः । मिथ्यात्वं- विपरीताभिनिवेशम् । धर्म-वस्तु-याथात्यम् । तदुक्तम्-

मिच्छन्त वेदन्तो जीवो विवरीयदंसणो होदि ।

ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ ३ ॥ [गो. जीव. १७ गा.]

मिथ्यात्वको बढानेवाली सामग्रीको दूर करनेकेलिए मुमुक्षुओको प्रेरणा करते है-

मुमुक्षु जन उस द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामग्रीको सदा दूर रखो मनुष्योकी दुर्गतिके निर्माण करनेमे मोहरूपी शत्रुकी कुलदेवता है ॥ २ ॥

विशेषार्थ-जैसे प्रतिपक्षके मनुष्योको दारिद्र्य बनानेकेलिए जीतनेवालेका कुलदेवता जागता रहता है वैसे ही प्राणियोकी दुर्गति करनेमे मोहका कुलदेवता द्रव्य-क्षेत्र काल और भाव है । मिथ्या देवताओकी प्रतिमा वगैरह द्रव्य है, उनके धर्मस्थान तीर्थस्थान क्षेत्र है । संक्रान्ति, ग्रहण, वृषिपक्ष आदि काल है । और समीचीन धर्मके सम्बन्धमे शंका आदि भाव है । मिथ्या देवताओकी आराधना करनेसे, उनके धर्मस्थानोको पूजनेसे, संक्रान्ति ग्रहण वगैरहमे दानादि करनेसे तथा समीचीन धर्मकी सत्यतामे सन्देह करनेसे मिथ्यात्वका ही पोषण होता है अतः उनसे दूर रहना चाहिए ॥ २ ॥

मिथ्यात्वका कारण और लक्षण कहते है-

मद्यके समान दर्शनमो कर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है जिससे अविष्ट हुए जीवको धर्म उसी तरह रू चिकर नही लगता जैसे पित्तज्वरके रोगीको मधुर रस अच्छा नही लगता-कडुआ लगता है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ-यहाँ यह बात ध्यान देनेकी है कि जिस मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होता है। अतः मिथ्यात्व अपनी ही गलतीका परिणाम है। उसे सुधारनेसे मिथ्यात्वसे उद्धार हो सकता है और उसे सुधारनेका रास्ता यही है कि मिथ्यात्वके सहायक द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे दूर रहा जाये ॥ ३ ॥

अथ मिथ्यात्वस्य विकल्पान तत्प्रणतृमुखेन लक्षयति-

बौध्द-शिव-द्विज-श्वेतपट-मस्करिपूर्वकाः ।

एकान्त-विनय-भ्रान्ति-संशयाज्ञानदुर्दृशः ॥ ४ ॥

भ्रान्तिः-विपर्ययः । तदुक्तम-

मिथ्योदयेन मिथ्यात्वं तत्त्वाश्रद्धानमडिनाम ।

एकान्तं संशयो मोढयं विपर्यासो विनीतता ॥

बौध्दादिः सितवस्त्रादिर्मस्करी विप्रतापसो ।

मिथ्यात्वे पच्छ्या भिन्ने प्रभवः प्रभवन्त्यमी ॥ []

मिथ्यात्वके भेद उनके पुरस्कर्ताओके साथ बतलाते है-

बौध्द एकान्त मिथ्यादृष्टि है। शैव विनय मिथ्यादृष्टि है। द्विज विपरीत मिथ्यादृष्टि है, श्वेताम्बर संशय मिथ्यादृष्टि है और मस्करी अज्ञान मिथ्यादृष्टि है।

विशेषार्थ-मिथ्यात्वके पाँच भेद है-एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान। पाँच भेदकी परम्परा प्राचीन है। आचार्य पूज्यपादने अपनी सर्वार्थसिद्धि (१११) मे मिथ्यात्वके भेदोका कथन दो प्रकारसे किया है-घमिथ्यादर्शनके दो भेद है-नैसर्गिक और परापदेशपूर्वक। परोपदेशके बिना मिथ्यात्व कर्मके उदयसे जो तत्त्वार्थका अश्रद्धान होता है वह नैसर्गिक मिथ्यात्व है। परोपदेशके निमित्से होनेवाला मिथ्यात्व चार प्रकारका है-क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानी और वैनयिक। अथवा मिथ्यात्वके पाँच भेद है-एकान्त मिथ्यादर्शन, विपरीत मिथ्यादर्शन, संशय मिथ्यादर्शन, वैनयिक मिथ्यादर्शन, अज्ञान मिथ्यादर्शन। यही है, ऐसा ही है इस प्रकार धर्मी और धर्मके विषयमे अभिप्राय एकान्त है। यह सब पुरु ष-ब्रम्ह ही है अथवा नितय ही है यह एकान्त है। परिग्रहीको निर्ग्रन्थ मानना, केवलीको कवलाहारी मानना, स्त्रीकी मुक्ति मानना आदि विपर्यय है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र मोक्षके मार्ग है या नहीं, इस तरह किसी भी पक्षको स्वीकार न करके डौवाडोल रहना संशय है। सब देवताओको और सब धर्मोंको समान मानना वैनयिक है। हित और अहितकी परीक्षाका अभाव अज्ञान है"अकलंकदेवने तत्त्वार्थवार्तिक (८११) मे पूज्यपादके ही कथनको दोहराया है। प्राकृत पंचसंग्रहके जीवसमास प्रकरणमे (गा०७) तथा भगवती आराधना (गा०५६) मे मिथ्यात्वके तीन भेद किये है-संशयित, अभिगृहित, अनभिगृहीत। आचार्य जटासिहनन्दिने अपने वारंगचरित [११४] मे मिथ्यात्वके सात भेद किये है-एकान्तिक, सांशयिक, मूढ,

स्वाभाविक, वैनयिक, व्युदग्राहित और विपरीत । आचार्य अमितगतिने अपने श्रावकाचारके द्वितीय अध्यायके आदिमे वरांगचरितका ही अनुसरण किया है । श्वेताम्बर परम्परामे स्थानांग सूत्र (३ ठा.) मे मिथ्यात्वके तीन भेद किये है-अक्रिया, अवनिय, अज्ञान । तत्त्वार्थ भाष्यमे दा भेद किये है- अभिगृहित, अनभिगृहित । टीकाकार सिध्सेन गणिने घ्वड शब्दसे सन्दिग्ध भी ले लिया है । धर्मसंग्रहमे पाँच भेद किये है-आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, अभिनिवेशिक, सांशयिक, अनाभोगि । प्रायः नाभेद है, लक्षणभेद नहीं है ।

१. एयंतबुध्ददरसी विवरीयो ब्रम्ह तावसो विणओ । इदो विय संसड़ाओ मक्किणओ चेव अण्णाणी ॥

-गो. जी. १६ गा.

मस्करिपूरणनामा पार्श्वनाथतीर्थात्पन्न ऋषिः स सद्योजातकेवलज्ञानद वीरजिनाद ध्वनिच्छल (ध्वनिमिच्छल) तान्नाजातध्वनौ मय्येकादशाडधारिण्यपि नास्य ध्वनिनिर्गमोभूत स्वे शिये तु गोतमे सोभूदिति मत्सराद विकल्पे नाय सर्वज्ञ इति ततोपसृत्य ध्वजाननान्मोक्षः इति मत प्रकाशितवान ॥ ४ ॥

ग्रन्थकारने एकान्त मिथ्यात्वका प्रणेता बौध्दको, विनय मिथ्यात्वका पुरस्कर्ता शैवको, विपरीत मिथ्यात्वका द्विजों, संशय मिथ्यात्वका श्वेताम्बरोको और अज्ञान मिथ्यात्वका मस्करीको कहा है । गोमटटसार जीवकाण्डमे भी कहा है--

ध्वौध्ददर्शन एकान्तवादी है, ब्रम्ह विपीरतमिथ्यात्वी है, तापस विनयमिथ्यात्वी है । इन्द्र संशयमिथ्यात्वी है और मस्करी अज्ञानी है । दर्शनसारमे देवसेनने प्रत्येकका विवरण देते हुए लिखा है-भगवान पार्श्वनार्थके तीर्थमे पिहिताश्रव मुनिका शिष्य बुध्दकीर्ती मुनि हुआ । उसने श्वेताम्बर धारण कर एकान्तमतकी प्रवृत्ति की । उसने मांसभक्षणका उपदेश दिया और कहा कर्ता अन्य है, भोक्ता अन्य है । यह बुध्दकीर्ति, बोध्दधर्मके संस्थापक बुध्द है उन्होने क्षणिकवादी बौध्ददर्शनकी स्थापना की । उन्होने स्वयं यह स्वीकार किया है कि एक समय मै नंगा रहता था, केशलोच करता था, हाथमे खाता था आदि । यह सब दिगम्बर जैन साधुकी चर्या है । अतः उन्होने अवश्य ही किसी जैन साधुसे दीक्षा ली होगी । जब उन्होने घर छोडा तब भगवान पार्श्वनाथका तीर्थ चलता था । भगवान महावीरने तीर्थप्रवर्तन तबतक नहीं किया था । अतः दर्शनसारके कथनमे तथ्य अवश्य है । विपीरत मतकी उत्पत्तिके सम्बन्धमे लिखा है कि मुनिसुव्रतनाथके तीर्थमे क्षीरकदम्ब नामक सम्यग्दृष्टि उपाध्याय था । उसका पुत्र पर्वत बडा दुष्ट था । उसने विपीरत मतका प्रवर्तन किया । जैन कथानकोमे नारद पर्वतके शास्त्रार्थकी कथा आती है । अजैर्यष्टव्यम इस श्रुतिमे अजका अर्थ बकरा पर्वतने बतलाया और राजा वसुने उसका समर्थन किया । इस तरह वैदिक हिंसाका सूत्रपात हुआ । पर्वत ब्रामण था । अतः द्विज या बम्ह शब्दसे उसीको विपीरत मिथ्यात्वका प्रवर्तक कहा है । विनय मिथ्यात्वके सम्बन्धमे कहा है कि सभ तीर्थामे वैनयिक होते है उनमे कोई जटाधारी, कोठ सिर मुडाये, कोई शिखाधारी और कोई नग्न होते है । दुष्ट या गुणवान हो भक्तिपूर्वक सबको साष्टांग नमस्कार करना चाहिए ऐसा उन मूढो ने माना । जीवकाण्डमे तापसको और आशाधरजीने शैवको वैनयिक कहा है । दर्शनसारमे जो कहा है । दर्शनसारमे भी श्वेताम्बर मतकी

उत्पत्ति बतलाकर उन्हे संशय मिथ्यादृष्टि कहा है। किन्तु आचार्य पूज्यपादने उन्हे विपीरत मिथ्यादृष्टि कहा है क्योंकि वे परिग्रहीको निर्ग्रन्थ कहते है। अतः विपीरत कथन करनेसे विपरीत मिथ्यादृष्टि ही हुए। मस्करीको अज्ञान मिथ्यादृष्टि कहा है। इसके सम्बन्धमे दर्शनसारमे कहा है-श्री वीर भगवानक तीर्थमे पार्श्वनाथ तीर्थकरके संधके गणीका शिष्य शिष्य मस्करी पूरण नामका साधु था उसने अज्ञानका उपदेश दिया। अज्ञानसे मोक्ष होता है, जीवका पुनर्जन्म नहीं है आदि। भगवन महावीरके समयमे बुद्धकी ही तरह पूरण और मक्खलि गोशालक नामके दो शास्ता थे। मक्खलि तो नियतिवादीके रू पमे प्रख्यात है। श्वेताम्बर आगमाके अनुसार वह महावीरका शिष्य भी रहा किन्तु उनके विरुद्ध हो गा। आशाधरजी ने अपनी टीकामे लिखा है-मस्करी अर्थात् पार्श्वनाथके तीर्थमे उत्पन्न हुआ मस्करीपूण नामक ऋषि। भगवान महावीरको केवलज्ञान होनेपर भी दिव्यध्वनि नहीं खिरी और

अथैकान्तमिथ्यात्वस्य दोषमाख्याति-

अभिसरति यतोऽपी सर्वथैकान्तसंवित

परयुवतिमनेकान्तात्मसंवित्प्रियोपि।

मुहुरु पहितनानाबन्धदुःखानुबन्ध

तमनुषजति विधदान को नु मिथ्यात्वशत्रुम ॥ ५ ॥

सर्वथैकान्ताः- केवलनित्य-क्षणिक् भावाभाव-भेदाभेदवादा-। संवित-प्रतिज्ञा ज्ञानं वा। अपि, न परं मिथ्यादृष्टिरित्यर्थः। नानाबन्धाः- प्रकृतिस्थित्यादिकर्मबन्धप्रकाराः रज्जुनिगडादिबन्धनानि च। अनुषजति-अनुबध्नाति ॥ ५ ॥

अथ विनयमिथ्यात्वं निन्दति-

शिवपूजादिमात्रेण मुक्तिमभ्युपगच्छताम।

निःशङ्क भूतघातोय नियोगः दुर्विधेः ॥ ६ ॥

शिवपूजा-स्वयमाहतविल्वपत्रादियजन-गदुक (मुदक) प्रदान-प्रदक्षिणीकरणात्मविडम्बनादिका। आदिशब्दाद गुरु पूजादि। मुक्ति। तथा चोक्तम-

विणयाओ हाइ मोक्ख किज्जइ पुण तेण गद्यहाईण।

अमुणिय गुणागुणाण य विणयं मिच्छत्तनडिएण ॥ [भावसंग्रह ७४]

दुर्विधेः-दुदैवस्य दुरागमप्रयोगस्य वा ॥ ६ ॥

गौतम स्वामीके गणधर होनेपर खिरी। इससे वह रू ष्ट हो गया कि मुण ग्यारह अंगे धारीके होते हुए भी दिव्यध्वनि नहीं हुई और गौतमके होनेपर हुई। द्वेषवश वह यह सर्वज्ञ नहीं है ऐसा कहकर अलग हो गया और अज्ञानसे मोक्ष होता है इस मतको प्रकाशित किया। अस्तु।

आगे एकान्त मिथ्यात्वके दोष कहते है-

जिसके कारण यह प्राणी अनेकान्त संवित्तिरूप प्यारी पन्तीके होते हुए भी सर्वथा एकान्त संवित्तिरूप परस्त्रीके साथ अभिसार करता है, उस शत्रुतुल्य मिथ्यात्वके साथ कौन विद्वान पुरुष सम्बन्ध रखेगा, जो बार-बार प्रकृतिबन्ध आदि नाना बन्धोके कारण होनेवाले दुखोकी परम्पराका जनक है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ-मिथ्यात्वसे बड़ा कोर्ट शत्रु नहीं है इसीके कारण जीव नाना प्रकारके कर्मबन्धनोसे बद्ध होकर नाना गतियोमे दुःख उठाता है । इसीके प्रभांसे अनेकान्तात्मक वस्तुत्वको एकान्तरूप मानता है । वस्तु क्षणिक ही है, इस प्रकारके एकान्तवाद फैले हुए है । एकान्तवादकी संवित्ति-ज्ञानको परस्त्रीको उपमा दी है और अनेकान्तवादकी संवित्तिज्ञानको स्त्रीकी उपमा दी है । जैसे दुष्ट लोगोकी संगतिमे पडकर मनुष्य घरमे प्रियपत्नीके होते हुए भी परस्त्रीके चक्रमे पँसकर जेल आदिका कष्ट उठाता है उसी तरह अनेकान्तरूप वस्तुका ज्ञाता भी मिथ्यात्वके प्रभावमे आकर एकान्तका अनुसरण करता है और कर्म बन्धनसे बद्ध होकर दुःख उठाता है ॥ ५ ॥

आगे विनय मिथ्यात्वकी निन्दा करते है-

केवल शिवपूजा आदिके द्वारा ही मुक्ति माननेवाले वैनयिकोका निःशंक प्राणिधात दुदैवका कोई अलौकिक ही व्यापार है ॥ ६ ॥

अथ विपर्यासमिथ्यात्वपरिहारे प्रेरयति-

येन प्रमाणतः क्षिप्ता श्रद्धधानाः श्रुति रसात् ।

चरन्ति श्रेयसे हिंसा स हिंस्यो मोहराक्षसः ॥ ७ ॥

प्रमाणतः--अनाप्तप्रणीतत्व-पशुवधप्रधानवादिबलेन । श्रुति--वेदम । रसात्--आनन्दमाश्रित्य । श्रेयसे--स्वर्गादिसानपुण्यार्थम । तदुक्तम-

मण्णञ्जलेण सुद्धित्ति मंसेण पियरवग्गाणं ।

पसुकयवहेण संग्ग धम्म गोजोणिफासेण^६ [भावसंग्रह गा. ५]

मोहः- विपरीतमिथ्यात्वनिमित्त कर्म ॥ ७ ॥

अथ संशयमिथ्यादृष्टिः : कलिकालसहायकमाविष्करोति-

अन्तस्खलच्छदल्यमिव प्रविष्टं रूपं स्वमेव स्ववधाय येषाम ।

तेषां हि भाग्यैः कलिरेष नूनं तपत्यंल लोकविवेकमश्नन ॥ ८ ॥

शल्यं--काण्डादि । रूपं--कि केवली कवलाहारी उदश्विदन्यथा इत्यादिदोलायितप्रतीतिलक्षणमात्म-

विशेषार्थ-पहले शैवोको विनय मिथ्यादृष्टि कहा था । शैव केवल शिवपूजासे ही मोक्ष मानते है । स्वयं लाये हुए बेलपत्रोसे पूजन, जलदान, प्रदक्षिणा, आत्मविडम्बना, ये उनकी शिवोपासनाके अंग है ।

शैव सम्प्रदायके अन्तर्गत अनेक पन्थ रहे है । मुख्य भेद है दक्षिणमार्ग और वाममार्ग । वाममार्ग शैवधर्मका विकृत रूप है । उसीमे मद्य, मांस, मदिरा, मैथुन और मुद्राके सेवनका विधान है ॥ ६ ॥

आगे विपीरत मिथ्यात्वको छोडनेकी प्रेरणा करते है-

जिसके कारण वेदपर श्रद्धा करनेवाले मीमांसक प्रमाणसे तिरस्कृत हिंसाको स्वर्ग आदिके साधन पुण्यकेलिए आनन्दपूर्वक करते है उस मोहरू पी राक्षसको मार डालना चाहिए ॥ ७ ॥

विशोषार्थ वेदके प्रामाण्यको स्वीकार करनेवाला मीमांसक दर्शन वेदविहित हिंसाको बडी श्रद्धा और हर्षके साथ करता था । उसका विश्वास था कि यज्ञमे पशुबलि करनेसे पुण्य होता है और उससे स्वर्गकी प्राप्ति होती है । छस्वर्गकामो यजेतड स्वर्गके इच्छकको यज्ञ करना चाहिए यह श्रुति है । बौद्धो और जैनोने इस वैदिकी हिंसाका धोर विरोध किया । फलतः यज्ञ ही बन्द हो गये । अकलंक देवने तत्त्वार्थवार्तिक (८।१) मे लिखा है, वैदिक ऋषि अज्ञानी थे क्योकि उन्होने हिंसाको धर्मका साधन माना । हिंसा तो पापका ही साधन हो सकती है, धर्मका साधन नही । यदि हिंसाको धर्मका साधन माना जाये तो मछलीमार, चिडीमारोको भी धर्म-प्राप्ति होनी चाहिए । यज्ञकी हिंसाके सिवाय दूसरी हिंसा पापका कारा है ऐसा कहना भी ठीक नही है क्योकि दोनो हिंसाओमे प्राणिवध् समान रूपसे होता है, इत्यादि । अतःजिस मिथ्यात्व मोहनीयके कारण ऐसी विपीरत मति होती है उसे ही समाप्त कर देना चाहिए ॥ ७ ॥

आगे कहते है कि संशय मिथ्यादृष्टिकी कलिकाळ सहायता करता है-

जिनका अपना ही रूप शरीरमे प्रविष्ट हुए चंचल काँटेकी तरह अपना घात करता है उन श्वेताम्बरोके भाग्यसे ही लोगोके विवेकको नष्ट करनेवाला लिकाल पूरी तरहसे तपता है- अपने प्रभावको फैलाये हुए है । यह हम निश्चित रूपसे मानते है ॥ ८ ॥

स्वरूपम । स्ववधाय--आत्मनो विपीरताभिनिवेशलख्णपरिणमनेनोपधातार्थम । कलिः-एतेन कलिकाले श्वेतपटमतमुदभूदिति ज्ञापितं स्यात् । यद वृद्धाः-

छत्तीसे वरिससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।

सोरटटे उप्पण्णो सेवडसंधो य वलहीए^६ [भावसंग्रह गा. १३७]

लोकविवेक-व्यवहर्तुजनाना युक्तायुक्तविचाराम ॥ ८ ॥

अथज्ञानमिथ्यादृशा दुर्ललितान्यनुशोचति-

युक्तावनाश्वास्य निरस्य चाप्तं भूतार्थमज्ञानममोनिमग्नाः ।

जनानुपायैरतिसंदधानाः पुष्णन्ति ही स्वव्यसनानि धर्ताः ॥ ९ ॥

युक्तोऽसर्वज्ञोऽस्ति सुनिश्चितासभवदबाधकप्रमाणत्वात् सुखादिवत् इत्यादि प्रमाणव्यवस्थायाम ।

भूतार्थ--वास्तवम । तदुक्तम-

च्छण्णाणाओ मोक्खं एवं लोयाण पयडमाणो हु ।

देवो ण अत्थि कोई सुण्णं ज्ञाएह इच्छाए ॥छ् [भावसंग्रह गा. १६४]

उपायः-तदभिप्रायानुप्रवेशोपक्रमैः । तथा चोक्तम-

चदृष्टान्तः सन्त्यसंख्येया मतिस्तद्वशवर्तिनी ।

किन्न कुर्युर्मही धूर्ता विवेकरहितामिमाम ॥छ

[सोम. उपा., १।४१ श्लो.]

अतिसंदधानाः-वच्चयमानाः ॥ ९ ॥

विशेषार्थ-भगवान महावीर स्वामीके पश्चात उनके अनुयायी दो भांगोमो विभाजित हो गये- श्वेताम्बर और दिगम्बर । श्वेताम्बर सम्प्रदायके साधु श्वेत वस्त्र पहनते हैं, स्त्रीकी मुक्ति मानते हैं और मानते हैं कि कवली अर्हन्त अवस्थांमे भी ग्रासाहार करते हैं । दिगम्बर इन बातोको स्वीकार नहीं करते । दिगम्बर अभिलेखोके अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमे बारह वर्षका दुर्भिक्ष पडनेपर श्रुतकेवली भद्रबाहु, जो उस समय भगवान महावीरके सर्वसंधके एकमात्र प्रधान थे, अपने संधको लेकर दक्षिणापथकी ओर चले गये । वही श्रमण बेलगोलामे उनका स्वर्गवास हो गया । जो साधु दक्षिण नहीं गये उन्हे उत्तरभारतमे दुर्भिक्षके कारण वस्त्रादि धारण करना पडा । दुर्भिक्ष बीतनेपर भी उन्होने उसे छोडा नहीं । फलतः संधभेद हो गया । उसीको लेकर कलिकालको उनका सहायक कहा गया है क्योकि संशयशील नहीं । इसीसे आचार्य पूज्यपादने श्वेताम्बर मान्यताओको विपीरत मिथ्यादर्शन बतलाया है । हॉ, एक यापनीय संध भी था जो स्त्रीमुक्ति और केवलिमुक्तिको तो मानता था किन्तु दिगम्बरत्वका पोषक था । दोनो बातोको अंगबीकार करनेसे उसे संशय मिथ्यादृष्टि कहा जा सकता है । संशय मिथ्यात्वको शरीरमे घुसे हुए काँटेकी उमपा दी है । जैसे पैरमे धुसा हुआ काँटा सदा करकता है वैसे ही संशयमे पडा हुआ व्यक्ति भी किसी निर्णपर न पहुँचनेके कारण सदा दुलमुल रहता है ॥ ८ ॥

आगे अज्ञान मिथ्यादृष्टियोके दुष्कृत्योपर खेद प्रकट करते हैं-

बडा खेद है कि अज्ञानरू पी अन्धकारमे डूबे हुए और अनेक उपायोसे लोगोको ठगनेवाले धूर्तजन परमार्थ सत सर्वज्ञका खण्डन करकेऔर युक्तिपर विशवस न करकेअपने इच्छित दुराचारोका ही पोषण करते हैं ॥ ९ ॥

अथ प्रकारान्तरेण मिथ्यात्वभेदान कथयन सर्वत्र सर्वदा तस्यापकारकत्वं कथयति-

तत्त्वारू चिरतत्त्वाभिनिवेशस्तत्तवसंशयः ।

मिथ्यात्व वा क्रचित्किचिन्नोश्रेयो जातु तादृशम ॥ १० ॥

तत्त्वारू चि-वस्तुयाथात्म्ये नैसर्गिकमश्रद्धानम । तथं चोक्तम-

एकेन्द्रियदिजीवांना धोराज्ञानविवर्तिनाम ।

तीव्रसंतमसाकार मिथ्यात्वमगृहीतकम ॥

[अमित. पं. सं. १।१३५]

अतत्त्वाभिनिवेशः- गृहितमिथ्यात्वम । तच्च परोपदेशाज्जातं, तच्च त्रिषट्यधिकत्रिशतभेदम ।

तद्यथा-

धेदाः क्रियाक्रियावादिविनयाज्ञानवादिनाम ।

गृहीतासत्यदृष्टिनां त्रिषष्टिःत्रिंशत्प्रमाः^६

त्रिंशीतिशत ज्ञेयमशीतिश्चतुरारु तरा ।

द्वात्रिंशत् सप्तषष्टिश्च तेषा भेदा त(य)थाक्रमम^७

[अमित. पं. सं. १।३०८-३०९]

विशेषार्थ--वेदको अपौरु षेय कहकर उसके ही प्रामाण्यको स्वीकार करनेवाले मीमांसक पुरु षकी सर्वज्ञताको स्वीकार नहीं करते । उनका कहना है कि वेदसे भूत, भावि, ही मनुष्य सर्वज्ञाता हो सकता है । उसकेबिना कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता । मीमांसादर्शनकेसर्वज्ञताका बडे जोरसे खण्डन किया है । क्योकि जैनदर्शन अपने तीर्थकरोको और बौध्ददर्शन बुध्दको सर्वज्ञ मानते थे और समन्तभद्र स्वामीने आपनी आप्तमीमांसामे सर्वज्ञकी सिध्दि की है । उसीका खण्डन कुमारिलने किया है और कुमारिलका खण्डन भट्टाकलंकदेवने तथा उनके टीकाकार विद्यानन्द स्वामी, प्रभांचन्द्र आदि आचार्योने किया है । यह सब युक्ति और तर्कके आधारपर किया गया है । इसी तरह वेदमे प्राणिहिंसाके विधानको भी धर्म कहा जाता है । हिंसा और धर्म परस्परमे विरोधी है । जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नहीं है और जहाँ धर्म है वहाँ हिंसा नहीं है । यह सब अज्ञानका ही विलास है कि मनुष्य धर्मके नामपर अधर्मका पोषण करता है । अतः अज्ञान मिथ्यात्व महादुःखदायी है ॥ ९ ॥

प्रकारान्तरसे मिथ्यात्वके भेदोका कथन करते हुए बतलाते है कि मिथ्यात्व सर्वत्र सर्वदा अपकार ही करता है-

तत्त्वेमे अरु चि, अतत्त्वाभिनिवेश और तत्त्वमे संशय, इस प्रकार मिथ्यात्वके तीन भेद है । किसी भी देशमे और किसी भी कालमे मिथ्यात्वके समान कोई भी अकल्याणकारी नहीं है ॥ १० ॥

विशेषार्थ-वस्तुके यथार्थ स्वरु पके जन्मजात अश्रध्दानको तत्त्व-अरु चि रू प मिथ्यात्व कहते है । इसको नैसर्गिक मिथ्यात्व या अगृहीत मिथ्यात्व भी कहते है । यह मिथ्यात्व धोर अज्ञानान्धकारमे पडे हुए एकेन्द्रिय आदि जीवोके होता है । कहा भी है-धारे अज्ञान मे पडहे हुए एकेन्द्रिय आदि जीवीके तीव्र अन्धकारकेतुल्य अगृहित मिथ्यात्व होता है ।

तत्र क्रियावादिनामस्तिकानां कौत्कलकांठविध्दि-कोशिक-हरिश्मश्रु-माद्यविकरोमश-हरीत-मुण्डाश्वलाय-नादयोशीतिशतपमाणभेदाः । तेषामानयनमुच्यतेइस्वभाव-नियति-कालेश्वरामकर्तत्वानां पच्चनामधो वादिपदार्थाना नवानामधः स्वतः परतो नित्यत्वानित्यत्वानि च चत्वारि संस्थाप्य अस्ति जीवः स्वतः स्वभावतः ॥ १ ॥ अस्ति परतो जीवः स्वभावतः ॥ २ ॥ अस्ति नित्यो जीवः स्वभावतः ॥ ३ ॥ अस्त्यनित्यो जीवः स्वभावतः ॥ ४ ॥ इत्याद्युच्चारणतो राशित्रयस्य परस्परवधे नव भेदा लभ्यन्ते ॥ १८० ॥ स्वभावादीनाह-

कःस्वभावमपहाय वक्रतां कण्टकेशु विहगेषु चित्रताम ।

मत्स्यकेशु कुरु ते पयोगति पडजेषु खरदण्डतां परः ॥ [अमित. पं. सं १।३१०]

बाह्य अप्याहुः-

काकाःकृष्णीकृता येन हंसाश्च धवलीकृताः।

मयूराश्चित्रिता येन स मे वृत्ति विधास्यति ॥

परके उपदेशसे उत्पन्न हुए गृहीत मिथ्यात्वको अतत्त्वाभिनिवेश कहते हैं। उसके तीन सौ त्रैसट भेद हैं। कहा भी है- क्रियावादी, अक्रियावादी, वैनयिक और अज्ञानवादी गृहीत मिथ्यादृष्टियोंके तीन सौ त्रैसट भेद हैं। उनमें-से क्रियावादियोंके १८० भेद हैं, अक्रियावादियोंके ८४ भेद हैं, वैनयिकोंके ३२ भेद हैं और अज्ञानवादियोंके ६७ भेद हैं।

क्रिया कर्ताके बिना नहीं होती और वह आत्माके साथ समवेत है ऐसा कहनेवाले क्रियावादी हैं। अथवा, वे कहते हैं कि क्रिया प्रधान है ज्ञान प्रधान नहीं है वे क्रियावादी हैं। अथवा, क्रिया अथर्ज्ञत जीवादि पदार्थ है जो कहते हैं वे क्रियावादी हैं [भग. सूत्र, टी. ३०।१]

इन क्रियावादियोंके कौत्कल, काण्ठेविधि, कौशिक, हरिश्मश्रु, माद्याविक, रोमश, हारीत, मुण्ड, आश्वलायन आदि एक सौ अस्सी भेद हैं। उनको लानेकी विधि इस प्रकार है- जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप ये नौ पदार्थ हैं। ये नौ पदार्थ स्वतः, परतः, नित्य, अनित्य, इन चार विकल्पोंके द्वारा तथा काल, ईश्वर, आत्मा, नियति और स्वभाव इन पाँच विकल्पोंके द्वारा हैं। यथा- जीव स्वतः स्वभावसे है ॥ १ ॥ जीव परतः स्वभावसे है ॥ २ ॥ जीव स्वभावसे नित्य है ॥ ३ ॥ जीव स्वभावसे अनित्य है ॥ ४ ॥ इस प्रकार उच्चारण करनेसे ९x५x४ इन तीनों राशियोंको परस्परमें गुणा करनेसे १८० भेद होते हैं। कहा भी है--

जीवादि पदार्थ नहीं है ऐसा कहनेवाले अक्रियावादी हैं। जो पदार्थ नहीं उसकी क्रिया भी नहीं है। यदि क्रिया हो तो वह पदार्थ घनहीड नहीं हो सकता। ऐसा कहनेवाले भी अक्रियावादी कहे जाते हैं [भग. सूत्र, टीका ३०।१, स्था. टी. ४।४।३४५]

अक्रियावादी नास्तिकोंके मरीचिकुमार, कपिल, उलूक, गार्ग्य, व्याधभूति, वाद्वलि, माटर, मौदगलायन आदि ८४ भेद हैं। उनके लानेकी विधि इस प्रकार है-स्वभाव आदि पाँचके नीचे पुण्य-पापको छोड़कर जीवादि सात पदार्थ स्थापित करो। फिर उनके नीचे स्वतः-परतः स्थापित करो। जीव स्वभावसे स्वतः नहीं है ॥ १ ॥ जीव स्वभावसे परतः नहीं

२. अत्थि सदो परदो वि य णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।

कालीसरप्पणियदिसहावेहि य ते हि भंगा हु ॥

यदा यथा यत्र यतोस्ति येन यत तदा तथा तत्र ततोस्ति तेन तत ।

स्फुटं नियत्येह नियंत्र्यमाण परो न शक्तः किमपी कर्तुम ॥ [अमित. पं. सं. १।३११]

क्वचिच्च-

विनैवोपादानैः समसमयमोयासविगमा-

दानकाकारत्वदपि पृथवगसानविषमम ॥

अखण्डब्रह्माण्डं विघटय वि(ति)याद्राग घटयति

चमत्कारोद्रेक जयति न सा कास्य नियतिः ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ।

कालः सुप्तेषु जागर्ति तस्मात् कालस्तु कारणम ॥

अज्ञो जन्तुरनीशोयमात्मनः सुख-दुखयोः ॥

ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ [महाभा० वनपर्व ३०।२८]

एको देवः सर्वभूतेषु लीनो नित्यो व्यापी सर्वकार्याणि कर्ता ।

आत्मा मूर्तः सर्वभूतस्कूपं साक्षाजज्ञाता निगुर्णः शुद्धरूपः पः ॥

[अमित. पं. सं. १।३१४]

परेष्याहुः-

उूर्णनाथ इवांशूनां चन्द्रकान्त इवाम्भसाम ।

प्ररोहाणामिव प्लक्षः स हेतुः सर्वजन्मिनाम ॥

है ॥२॥ अजीव स्वभावसे स्वतः नहीं है ॥३॥ अजीव स्वभावसे परतः नहीं है ॥४॥ इस प्रकार उच्चारण करने पर ५X७X२ को परस्परमे गुणा करनेसे ७० भेद होते हैं । तथा नियति और कालके नीचे सात पदार्थोंको रखकर जीव नियतिसे नहीं है ॥१॥ जीव कालसे नहीं है ॥२॥ इत्यादि कथन करनेपर चौदह भेद होते हैं । दोनोका मिलानेसे ८४ भेद होते हैं । श्वेताम्बर टीका ग्रन्थोंके अनुसार [आचा., टी. १।१।१।४, नन्दी. टी. मलय सू. ४६] जीवादि सात पदार्थ स्व और पर तथा काल, यदृच्छा, नियाति, स्वभाव, ईश्वर और आत्मा इन सबको परस्परमे गुणा करनेपर ७X२X६=८४ भेद होते हैं । विनयवादियोंके वसिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकि, रोमहर्षिण, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, ऐन्द्रदत्त, अयस्थूण आदि ३२ भेद हैं । उनको लानेकी विधि इस प्रकार है--देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बाल, माता और पिता इन आठोकी मन, वचन, काय और दानसे विनय करनेपर ८X४=३२ भेद होते हैं । यथा--देवोकी मनसे विनय करनी चाहिए ॥१॥ देवोकी वचनसे विनय करना चाहिए ॥२॥ देवोकी कायसे विनय करनी चाहिए ॥३॥ देवोकी दानसे विनय करनी चाहिए ॥४॥ अज्ञानवादियोंके साकल्य, वाकल्य, कुथिमि, नारायण, कठ, माध्यन्दिन, मौद, पैप्पलाद, बादरायण, ऐतिकायन, वसु, जैमिनि आदि ६७ भेद हैं । उनको लानेकी विधि इस प्रकार है--जीवादि नौ पदार्थोंके नीचे सत, असत, सदसत, अवाच्य, सदवाच्य, असदवाच्य, सदसदवाच्य इन सात भूंगोको रखना चाहिए । इस तरह ९X७=६३ भेद होते हैं । पुनः एक शुद्ध पदार्थको सत, असत, सदसत

और अवक्तव्य इन चार भंगोके साथ मिलानेस चर भेद होते है । इस तरह अज्ञानवादियोंके ६७ भेद होते है । श्वेताम्बरीय टीका ग्रन्थीक अनुसार जीव आदि नौ पदार्थोंको अस्ति आदि सात भंगोके

आक्रियावादिनां नास्तिकांना मरीचि-कमारोलूक-कपिल-कार्ग्य-व्याधभूति-वा,लि-माडर-मोदिगतृयाद-यश्चतुरशीतिप्रमा भेदाः । तेषामानयनमाह-

स्वभावादीना पच्चानामधः पुण्यपापानिष्टेः सप्तानां जीवादीनामधः स्व-पर,यं निक्षिपय नास्ति स्वतो जीवः स्वभावतः ।१। नास्ति परतो जीवः स्वभावतः ।२। नास्ति स्वतोजीवः स्वभावतः ।३। नास्ति परतोजीवः स्वभावतः ।४। इत्याद्युच्चारण परस्परभ्यासे वा लब्धा भेदाः सप्ततिः ७० । नियतिकालयोराधो जीवादिसप्तकं विन्यस्य नास्ति जीवो नियतितः ।१। नास्ति जीवः कालतः ॥२॥ इत्याद्युच्चारणे लब्धाश्चतुर्दश ॥१४॥ पूर्वेः सहैते चतुरशीतिः ॥८४॥ विनयवादिना वसिष्ट-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मीकि-रोमहर्षिण-सन्नदत्त-व्यासैलापुत्रोप-मन्यवेदुदत्तायस्थूणादयो द्वात्रिंशदभेदाः । तेषामानयन माह--देव-नपृषित-यति-जानिक-वृध्द-बाल-जननी-जनका-नमो मनोवाक्कायदानचतुष्टयं निक्षिप्य, विनयो मनसा देवेषु कार्यः; विनयो वाचा देवेषु कार्यः ॥२॥ विनयः कायेन देवेषु कार्यः- ॥३॥ विनयो दानेन देवेषु कार्यः ॥४॥ इत्युच्चारणैर्लब्धा भेदा द्वात्रिंशत ॥३२॥

आानवादिना साकल्य-वाकल्य-कुथिमि-चारायण-कठ-माध्यदिन-मैद-पिल्पपलाद-वादरायणैतिकायन-वसु-जैमिनिप्रभृयःसप्तषष्टिसंख्या भेदाः । तेषामानयनमाह--नावाना जीवादीनामघः सत असत सदसत (अ) वाच्यं सद्वा (दरा)च्यं असद्वा(दवा) च्यं सदसद्वा(दवा)च्यमिति सप्त निक्षिप्य सज्जीवभाव को वेत्ति ।१। असज्जीवभाव को वेत्ति ।२। इत्याद्युच्चारणे लब्धा भेदास्त्रिषष्टिः ॥६३॥

पुनर्भावोत्पत्तिमाश्रित्य सध्दावासध्दाव-सदसध्दवावाच्याना चतुष्टयं प्रस्तीर्य सध्दावोत्पत्ति को वेत्ति ।१। असध्दावोत्पत्ति को वेत्ति ।२। सदसध्दवोत्पत्ति को वेत्ति ।३। वाच्यभ्वावोत्पत्ति को वेत्ति ।४। इत्युच्चारणया लब्धैश्चतुर्भिरेतैः सह पूर्वे सप्तषष्टि ६७ । सर्वसमासे त्रिषट्यधिकानि त्रीणि शतानि ३६३ ।

तत्त्वसंशयः--जिनोक्तं तत्त्वं सत्यं न वा इति संकल्पः ॥१०॥

साथ मिलानेसे ६३ और उत्तपत्तिको पारम्भके चार भंगोके साथ मिलानेसे चार इस तरह ६७ भंग होते है । यहाँ स्वभाव आदिका भी स्वरू प जान लेना चाहिए--

स्वभाववादियोंका कहना है कि स्वभावको छोडकर दूसरा कौन कौटोको तीक्ष्ण बनाता है, पक्षियोंको नाना रू प देता है, मछलियोंको जलमे चलाता है और कमलोमे कठोर नाल लगाता है ।

अन्य जन भी कहते है--जिसने कौओको काला किया, हंसोको सफेद किया, मयूरो को चित्रित किया, वही मुझे आजीविका देगा ।

नियतिका स्वरूप इस प्रकार है--जब, जैसे, जहाँ, जिसके द्वारा, जो होता है तब, तहाँ, तैसे, तिसकेद्वारा वह होता है। स्पष्ट है कि नियतिकेद्वारा ही यहाँ सब नियन्त्रित है। दूसरा कोई कुछ भी नहीं कर सकता।

कालवादी कहते हैं--काल प्राणियोंको पकाता है, काल प्रजाका संहार करता है। काल सोते हुए भी जागता है इसलिए काल ही कारण है।

ईश्वरवादी कहते हैं--यह अज्ञानी जीव अपने सुख-दुःखका स्वामी नहीं है। अतः ईश्वरके द्वारा प्रेरित होकर स्वर्गमे या नरकमे जाता है।

सब प्राणियोंमे एक देव समाया हुआ है, वह नित्य है, व्यापक है, सब कार्योंका कर्ता है, आत्मा है, मूर्त है, सर्व प्राणिस्वरूप है, साक्षात् ज्ञाता है, निर्गुण है, शुद्धरूप है।

३. एको देवः सर्वभूतेषु लीनो नित्यो व्यापी सर्वकार्याणि कर्ता ।
आत्मा मूर्तः सर्वभूतस्वरूप साक्षाज्ज्ञाता निर्गुणः शुद्धरूपः पणः ॥

अथ मिथ्यात्वव्यवच्छेदपर प्रशंसन्ति-

यो मोहसप्तार्चिषि दीप्यमाने चेक्लिश्यमानं पुरुषं झर्ष वा ।

उदधृत्य निर्वापयतीध्दविद्यापीयूषसेकैः स कृती कृतार्थः ॥११॥

मोहसप्तार्चिषि--मिथ्यात्वाग्नौ । सप्तार्चिरित्युपमानपदं मिथ्यात्वस्य सप्तापि भेदाः कैश्चिदिष्यन्त इति सूचयति । तथं च पठन्ति-

ऐकान्तिकं सांशयिकं च मूढं स्वाभाविकं वैनयिकं तथैव ।

व्युदग्राहिकं तद्विपरीसंज्ञं मिथ्यात्वभेदानवबोधं सप्त ॥ [वरांगचरित ११४]

तद्विवरणश्लोकाः क्रमेण तथा-

सर्वथा क्षणिको जीवः सर्वथा सगुणो गुणः ।

इत्यादिभाषमाणस्य तदेकान्तिकमिष्यते ॥१॥ [अमि. श्रा. २६]

सर्वज्ञेन विरागेण जीवाजीवादिभाशितम् ।

तथ्यं न वेति संकल्पे दृष्टिः सांशयिकी मता ॥२॥ [अ. श्रा. २-७]

देवो रागी यतिः सडी धर्मः प्राणिनिशुभनम् ।

मूढदृष्टिरिति ब्रूते युक्तायुक्तविवेचकाः ॥३॥ [अ. श्रा. २१२]

दीनो निसर्गमिथ्यात्वस्तत्तवातत्वं न बुध्यते ।

सुन्दरासुन्दरं रूपं जात्यन्धं इव सर्वथा ॥४॥ [अमित. श्रा. २११]

आगमा लिङ्गिनी (-नो) देवौ(वा) धर्मः सर्वे सदएि संमाः ।

इत्येषा कथ्येत बुद्धिः पुंसो वैनयिकी जिनेः ॥५॥ [अमित. श्रा. २१९]

पूर्णः कुहेतुदृष्टान्तैर्न तत्त्वं विपीरतरु चिजनः ।

मण्डलश्चर्मकारस्य भोज्य चर्मलवैरिव ॥६॥ [अमित. श्रा. २।९]

अतत्त्वं मन्यते तत्त्व विपीरतरु चिजनः

दोषातुरमनास्तिक्त ज्वरीव मधुर रसम ॥७॥ [अमित. श्रा. २।१०]

दूसरोने भी कहा है--जैसे मकड़ी अपने तन्तुजालका हेतु है, चन्द्रकान्तमणि जलका हेतु है, डका पेड प्ररोहोका हेतु है वैसे ही वह ईश्वर सब प्राणियोका हेतु है । इन ३६३ मतोका उपपादन ग्रन्थकार आशाधरने अपनी ज्ञानदीपिका नाम पंजिकामे अमितगतिकृत पंचसंग्रहकेआधारसे किया है ।

जो मिथ्यात्वका विनाश करनेमे तत्पर है उसकी प्रशंसा करते है-

जो प्रज्वलित मिथ्यात्व मोहरू पी अग्निमे मछलीकी तरह तडफडाते हुए जीवको उससे निकालकर प्रमाण नय आदिके ज्ञानरू पी अमृतसिचनकेद्वारा शान्ति पहुँचाते है वे ही विध्वान पूर्णमनोरथ होते है ॥११॥

विशेषार्थ--यहाँ मिथ्यात्वको सपत्तिकी उपमा दी है । सप्तार्चि अग्नको कहते है क्याकि उसकी सात ज्वालाएँ मानी है । इसी तरह मिथ्यात्वकेभी कोई आचार्य सात भेद मानते है तथा-

ऐकान्तिक, सांशयिक, मूढ, स्वाभाविक, वैनयिक, व्युदग्राहिक और विपीरत, ये मिथ्यात्वके सात भेद जानो ।

३ अतथ्यं मन्यते तथ्यं. . . ॥ अमि. श्रा. २-१ ।

अथवा मोह इत्यनेन मिथ्यात्व-सम्यग्मिथ्यात्व-सम्यक्त्वाख्यस्त्रोयो दर्शनमोहभेदः अनन्तानुबन्धिक्लेश-मानमायालोभाख्याचारित्रमोहभेदा गृह्यन्ते सप्तानामपि सम्यक्त्वधातकत्वादिति सप्तार्चिःशब्दः स्मरयति । चेक्लिश्यमानं--भृश पुनः पुनर्वा उपतप्यमानम ॥११॥

अथ मिथ्यात्वसम्यक्त्वयोः सुखप्रतीत्यर्थ लक्षणमुपसगहयति-

ग्रासाद्यादीनवे देवे वस्त्रादिग्रन्थिले गुरो ।

धर्मे हिंसामये तद्धीर्मिथ्यात्वमितरेतरत ॥१२॥

ग्रासाद्यादीनवे--ग्रासादिभिः मवलाहारप्रभृतिभिः कार्यैरभिव्यज्माना आदीनवा क्षुदादयो दोषा यस्य । तत्र तावत कवलाहारिणि सितपटाचार्यकल्पिते न रागद्वेषाभिव्यक्तिर्यथा--यो यः कवल भुङ्क्ते स स न वीतरागो यथा रथपापुरु षः, भुङ्क्ते च कवल स भव नातः केवलीति । कवलाहारो हि स्मरणभिलाषभ्या भुंज्यते भुंक्तवता च काष्ठौष्ठप्रमाणतृप्तेनारु चितस्त्यज्यते । तथ् च अभिलाषारु चिभ्यामाह रे प्रवृत्तिनिवृत्तिमत्त्वात्कथं वीतरागत्वं तदभावान्नाप्तता । आदिशब्दाद्यथा-

अथवा घमोहड शब्दसे मिथ्यात्व, सम्यगमिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दर्शन मोहनीयके तीन भेद और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मानू, माया, लोभ ये चारित्र मोहनीयके चार भेद ग्रहण किये जाते हैं क्योंकि ये सातो सम्यग्दर्शनके घातक होनेसे जीवको कष्ट देते हैं। सप्तार्चि शब्द इनका स्मरण कराता है।

मिथ्यात्व और सम्यक्त्वका सुखपूर्वक बोध करानेकेलिए लक्षण कहते हैं-

कवलाहार, स्त्री, शस्त्र और रू द्राक्षकी माला धारण करने आदिसे जिनमे भूख, प्यास, मोह, राग, द्वेष आदि दोषोका अनुमान किया जाता है ऐसे देवको देव मानना, वस्त्र-दण्ड आदि परिग्रहके धारी गुरु को गुरु मानना और हिसामय धर्मको धर्म मानना मिथ्यात्व है। तथं निर्दोष देवको देव मानना, और हिसामय धर्मको धर्म मानना मिथ्यात्व है। तथं निर्दोष देवको देव मानना, निर्ग्रन्थ गुरु को गुरु मानना और अहिसामयी धर्मको धर्म मानना सम्यक्त्व है ॥१२॥

विशेषार्थ--विभिन्न शास्त्रोमे सम्यग्दर्शनके भिन्न-भिन्न लक्षण पाये जाते हैं। उन्हे लेकर कभी-कभी ज्ञानियोतमे भी विवाद खडा हो जाता है। पण्डितप्रवर टोडरमलजीने अपने मोक्षमार्ग प्रकाशकके नौवे अधिकारमे उनका समन्वय बडे सुन्दर एंगसे किया है। यहाँ उसका साराश दिया जाता है--यहाँ सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे धर्मकी श्रद्धाको सम्यक्त्व कहा है। ऐसा ही कथन रत्नकरण्डश्रावकाचारमे है। वहाँ सच्चे धर्मके स्थानमे सच्चा शास्त्र कहा है। किन्तु तत्त्वार्थसूत्रमे तत्त्वार्थके श्रद्धानको सम्यक्त्व कहा है। अमृतचन्द्राचार्यने पुरु षार्थसिद्धयपायमे भी ऐसा ही कहा है--

घविपरीत अभिप्रायसे रहित जीव-अजीव आदि तत्त्वार्थोका सदा श्रद्धान करनला योग्य है। यह श्रद्धान आत्मका स्वरूप है^६

इन्ही आचार्य अमृतचन्द्रने अपने इसी ग्रन्थिमे आत्माके विनिश्चयको सम्यग्दर्शन कहा है--
घदर्शनमात्मविनिश्चितिः"तथा समयसारकलशमे घकत्वे नियतस्यड इत्यादि श्लोकमे कहा है कि परद्रव्यसे भिन्न आत्मका अवलोकन ही नियमसे सम्यग्दर्शन है। इन लक्षणोमे सिध्दान्त भेद नहीं है; दृष्टि भेद है, शैली भेद है। अरहन्तदेव आदिके श्रद्धानसे

६. जीवाजीवादीना तत्त्वार्थाना सदैव कर्तव्यम।

श्रद्धान विपरीताभिनिवेशविविक्तमात्मरूप तत ॥--पुरु षार्थ. २२।

येस्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाडकलडिकताः।

निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युनर्प मुक्तये ॥

नाद्याटटहाससंगीताद्युपप्लवविस्थुलाः।

लम्भयेयुः पदं शान्तेः प्रपन्नात प्राणिनः कथम ॥ []

ग्रथिलः--परिग्रहवान। उक्तं च-

सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः ।

अब्रम्हचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु ॥ []

हिसामये । उक्तंच-

देवातिथिमन्त्रौषधंपित्रादिनिमित्ततोपि संपन्ना ।

हिंसा धत्ते नरकेकि पुनरिह नान्यथा विहिता ॥ [अमि. श्रा. ६।२९]

कुदेव आदिका श्रधदान दूर होता है इससे गृहित मियित्त्वका अभाव होता है । इसलिए इसे सम्यक्त्वका लक्षण कहा है । किन्तु यह सम्यक्त्वका नियामक लक्षण नहीं है क्योंकि व्यवहारधर्मके धारक मिथ्यादृष्टियोंके भी ऐसा श्रधदान पाया जाता है । अतः अरिहन्त देवादिका श्रधदान होनेपर सम्यक्त्व हो या न हो किन्तु अरहन्तादिका यथार्थ श्रधदान हुए बिना सम्यग्दर्शन कभी भी नहीं हो सकता । सम्यग्दृष्टिको उनका श्रधदान होता ही है । किन्तु वैसा श्रधदान मिथ्यादृष्टिको नहीं होता । वह पक्षमोहवंश श्रधदान करताह है । क्योंकि उसके तत्त्वार्थ श्रधदान नहीं है इसलिए उसके अरहन्त आदिका श्रधदान भी यथार्थ पहचान सहित नहीं है । जिसके तत्त्वार्थश्रधदान होता है उसके सच्चे अरहन्त आदिके स्वरूपका यथार्थ श्रधदान होता ही है क्योंकि अरिहन्त आदिके स्वरूपका यथार्थ पहचाननेसे जीव आदिकी पहचान होती है अतः इन दोनोंको परस्परमे अविनाभावी जानकर भी अरहन्त आदिके श्रधदानको सम्यक्त्व कहा है । तथं सप्ततत्त्वोके श्रधदानमे अरहन्त आदिका श्रधदान गर्भित है । क्योंकि तत्त्वश्रधदानमे मोक्षतत्त्व सर्वोत्कृष्ट है । और अरहन्त सिद्ध अवस्था होनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है अतः मोक्षतत्त्वमे श्रधदान होनेपर संवर निर्जराके धारक मुनियोपर श्रधदान होगी ही । यही सच्चे गुरु का श्रधदान हुआ । तथा रागादि रहित भावका नाम अहिंसा है । उसीको उपादेयरूप धर्म माननेसे वही धर्मका श्रधदान हुआ । इस प्रकार तत्त्वश्रधदानमे अरहन्त आदिका श्रधदान भी गर्भित है । अतः सम्यक्त्वमे देव आदिके श्रधदानका नियम है । इस विषयमे इ तातव्य यह है की तत्त्वश्रधदानके बिना अरहन्तके छियालीस गुणोका और शरीराश्रित गुणोको भिन्न-भिन्न नहीं जानता । यदि जाने तो आत्माको परद्रव्यसे भिन्न अवश्य माने । इसलिए जिसके जीवादि तत्त्वको सच्चा श्रधदान नहीं है उसके अरहन्त आदिका भी सच्चा श्रधदान नहीं है । तथं मोक्ष आदि तत्त्वके श्रधदान बिना अरहन्त आदिका भी माहात्म्य यथार्थ नहीं जानता । लौकिक अतिशयादिसे अरहन्तका, आदिका भी सच्चा श्रधदान नहीं है । तथा मोक्ष आदि तत्त्वके श्रधदान बिना अरहन्त आदिका भी माहात्म्य यथार्थ नहीं जानता । लौकिक अतिशयादिसे अरहन्तका, तपश्चरणादिसे गुरुका और परजीवोकी हिंसा आदिन करनेसे धर्मका माहात्म्य जानता है । यह सब तो पराश्रित भाव है । आत्माश्रित भावोसे

अपि च-

वृक्षाश्छित्त्वा पशून हत्वा स्नात्वा रू धिरकर्दमे ।

यद्येव गम्यते स्वर्गे नरकेकेन गम्यते ॥ []

तद्धीः--देवगुरु धर्मबुद्धिः । इतरा निर्दोषे देवे निर्ग्रन्थे गुरो अहिसालक्षणे च धर्मे तदबुद्धिः ॥१२॥

अथ सम्यक्त्वसामग्रीमाशसति-

तद् द्रव्यमव्यथमुदेतु शुभैः स देशः संतन्यता प्रतपतु प्रततं स कालः ।

भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण प्रस्तौति तत्त्वरू चिमाप्तगवी नरस्य ॥१३॥

द्रव्यं--निदेहत्प्रतिमादि । देशः--समवसरणचैत्यालयादिः । कालः--जिनजन्माभिषेकनिष्क्रमणादिः ।

भावः--औपशमिकादिः । तत्त्वरू चिइतत्तव जीवादिवस्तुयाथात्म्यम । उक्तं च-

अरहन्त आदिका श्रधदान ही यथार्थ श्रधदान है और वह तत्त्वश्रधदान होनेपर ही होता है । इसलिए जिसके अरहन्त आदिका सच्चा श्रधदान होता है उसके तत्त्वश्रधदान होता ही है । तथा तत्त्वोमे जीव-अजीवके श्रधदानका प्रयोजन स्व और परका भिन्न श्रधदान है । और आस्त्रव आदिके श्रधदानका प्रयोजन रागादिको छोडना है । सो स्व और परका भिन्न श्रधदान होनेपर परद्रव्यमे रादि न करनेका श्रधदान होता है । इस तरह तत्त्वार्थश्रधदानका प्रयोजन जानना अतः आत्मश्रधदानको सम्यक्त्व कहा है क्योंकि वही मूलभूत प्रयोजन है । इस तरह भिन्न प्रयोजनोसे भिन्न लक्षण एक साथ पाये जाते है । इसलिए सम्यग्दृष्टिके श्रधदानमे चारो ही लक्षण होते है । यहाँ सच्चे देव, सच्चे गुरु और धर्मके श्रधदानको सम्यक्त्व काह है क्योंकि-

जो स्त्री, शस्त्र, रू द्राक्षमाला आदि रागके चिन्होसे कलंकयुक्त है तथा लोगोका बुरा भला करनेमे तत्पर रहे है , वे देव मुक्तिकेसाधन नही हो सकते ।

तथा--देव, अतिथि, मन्त्रसिद्धि, औषधं और माता-पिताके उद्येश्यसे किये गये श्राधदके निमित्त्से भी की गयी हिंसा मनुष्यको नरकमे ले जाती है । तब अन्य प्रकारसे की गयी हिंसाका तो कहना ही क्या है ?

और भी कहा है-

यदि वृक्षोको काटनेसे, पशुओकी हत्या करनेसे और खूनसे भरी हुई कीचडमे स्नान करनेसे स्वर्गमे जाते हे तो फिर नरकमे क्या करनेसे जाते है ?

अतः निर्दोष देव, निर्ग्रन्थ गुरु और हिंसामयी धर्ममे बुद्धि ही सम्यक्त्व है ॥१२॥

आगे सम्यक्त्वकी सामग्री बतलाते है-

वह द्रव्य बिना किसी बाधाके अपना कार्य करनेके लिए समर्थ हो, वह देश सदा शुंभ कल्याणोसे परिपूर्ण रहे, वह काल सदा शंक्ति सम्पन्न रहे, और वह भाव सदा समृद्ध हो जिनके अनुग्रहसे परापर गुरु ओकी वाणी जीवमे उसी प्रकार, तत्त्व रू चि उत्पन्न करती है जैसे प्रामाणिक पुरु षकेद्वारा दी गयी विश्वस्त गौ मनुष्यको दूध प्रदान करती है॥१३॥

ध्वेतनोचेतनो वार्थो यो यथैव व्यवस्थितः ।

तथैव तस्य यो भावो यथात्म्य तत्त्वमुच्यते^१ [तत्त्वानुशा. १११]

तस्य रू चिः श्रद्धानं विपीरताभिनिवेशविविक्तमामात्मस्वरू पं न त्विच्छालक्षण,
तस्योपशान्तकषायादिषु मुक्तात्मसु वासंभवात् । आप्तगवी--परापरगुणां गौवकि तत्वरू चि प्रस्तौति--
प्रक्षरति सुरभिरिव क्षीरम । नरस्य--मानुषस्यात्मनो वा ॥१३॥

अथ परमात्पलक्षणमाह-

मुक्तोष्ठादशभिर्दोषैर्यु क्तः सार्वज्ञसंपदा ।

शास्ति मुक्तिपंथ भव्यान योसावाप्तो गत्पतिः ॥१४॥

दोषैः । ते यथा-

क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम ।

जरा रू जा च मृत्युश्च स्वेदः खेदो मदो रतिः ॥

विस्मयो जननं निद्रा विषादोष्ठादश ध्रुवाः ।

त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे ॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तः सोयमाप्तो निरज्जनः ।-- [आत्पस्वरू प १५-१७]

एतेनापायापगमातिशय उक्तः । सार्वज्ञसंपदाइस्सार्वज्ञये अनन्तज्ञानादिचतुष्टय-लक्षणायां
जीवन्मुक्तो, संपतइसमवसरणाष्टमहाप्रातिहार्यादिविभूतिस्तया । एतेन ज्ञानातिशयः पूजातिशयश्चोक्तः ।
शास्तीत्यादिः । एतेन वचनातिशय उक्तः । एवमुत्तरत्रापि बोध्यम ॥१४॥

विशेषार्थ-सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिकी सामग्री है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य है जिनबिम्ब आदि ।
क्षेत्र है समवसरण, चैत्यालय आदि । काल है जिन भगवानका जन्मकल्याण या तपकलयाणक आदिका
काल या जीवके संसार परिभ्रमणका काल जब अर्धपुदगल परावर्त शेत रहे तब सम्यग्दर्शन होता है ।
क्योंकि सम्यग्दर्शन होनेपर जीव इससे अधिक काल तक संसारमे भ्रमण नहीं करता । तथं जब जीव
सम्यग्दर्शनके अभिमुख होता है तो उसके अतःकरणं, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण रू प भाव होते है । ये
ही भाव है जिनके बिना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती । इस सब सामग्रीके होनेपर जीवकी तत्त्वमे रू चि
होती है । आचार्य परम्परासे चली आती हुई जिनवाणीको सुनकर वस्तुके यथार्थ स्वरू पके प्रति रू चि
अर्थात् श्रद्धाधान होता है । तत्त्वका स्वरू प इस प्रकार कहा है--

जो चेतन या अचेतन पदार्थ जिस रू पसे स्थित है उसका उसी रू पसे जो भाव है उसे यथात्म्य
या तत्त्व कहते है ।

उस तत्त्वकी रू चि अर्थात् विपरीत अभिप्रायरहित श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । वह सम्यग्दर्शन
आत्माका परिणाम है । रू चिका अर्थ इच्छा भी होता है । किन्तु यहाँ इच्छा अर्थ नहीं लेना चाहिए । इच्छा
मोहकी पर्याय है अतः ग्यारहवे आदि गुणस्थानोमे तथा मुक्त जीवामे इच्छा नहीं होती, किन्तु सम्यग्दर्शन
होता है ॥१३॥

आगे रम आप्तका लक्षण कहते है--

जो अठारह दोषोसे मुक्त है, और सार्वज्ञ अर्थात् अनन्तज्ञान आदि चतुष्टयरूप जीवन्मुक्तके होनेपर समवसरण, अष्ट महाप्रातिहार्य आदि विभूतिसे युक्त है तथा भव्य जीवोको मोक्षमार्गका उपदेश देता है वह तीनों लोकोका स्वामी आप्त है ॥१४॥

अथ मुमुक्षुन परमाप्तसेवायां व्यापारयति--

यो जन्मान्तरतत्त्वभावानभुवा बोधेन बुदध्वा स्वयं,
श्रेयोमार्गमपास्य घातिदुरित साक्षादशेष विदन ।
सद्यस्तीर्थकरत्वपक्त्रिमगिरा कामं निरीहो जगत,
तत्त्वं शंस्ति शिवार्थिभिः स भगवानाप्तोत्तमः सेव्यताम ॥१५॥

धातिरदुरितं--मोहनीयज्ञानावरण-दर्शनावरणन्तरायाख्यकर्मचतुष्टयम् । साक्षादशेष विदन । मीमासंक प्रत्येतत्साधन यथा--कश्चित्पुरुषः सकलपदार्थसाक्षात्कारी तदग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययत्वात् । यद्यदग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययं तत्तत्साक्षात्कारि, यथापगततिमिरं लोचनं रूपसाक्षात्कारि । तदग्रहणास्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययश्च विवादापन्नः कश्चित इति सकलपदार्थग्रहणस्वभावत्वात् नान्नोसिद्धं चोदनात् (--तः) सकलपदार्थपरिज्ञानस्यान्यथायोगादन्धस्यवाददर्शात् रूपप्रतीतिरिति । व्याप्तिज्ञानोत्पत्तिबलाच्चाशेषविषयज्ञानसंभवः, केवलवैशद्ये विवादः । तत्र दोषावरणापगम एक कारणं

विशेषार्थ--भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, बुढापा, रोग, मृत्यु, पसीना, खेद, अहंकार, रति, अचरज, जन्म, निद्रा और विषराद ये अठारह दोष तीनों लोकोके सब प्राणियोमे पाये जाते हैं । इन दोषोसे जो छूट गया है वही निर्दोष सच्चा आप्त है । और जिनमे ये दाष सदा वर्तमान रहते हैं उन्हें संसारी कहते हैं ।

तीनों लोकोके सब संसारी जीवामे ये अठारह दोष पाये जाते हैं । जो इन अठारह दोषोके नष्ट करके उनसे मुक्त हो जाता है उसे जीवन्मुक्त कहते हैं । इन अठारह दोषोके हटनेपर उस जीवनमुक्त परमात्मामे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्यरूप अनन्तचतुष्टय प्रकट होते हैं और वह सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाता है । तब उसकी उपदेश सभा लगती है उसे समवसरण कहते हैं क्योंकि आत्मकल्याणके इच्छुक सभी जब उसमे जा सकते हैं । समवसरणकी विभूतिका वर्णन त्रिलोक प्रज्ञप्तिके चतुर्थ अधिकारसे जान लेना चाहिए । तब आप्तकी दिव्यध्वनि खिरती है । इस तरह आप्तमे चार अतिशय होते हैं । प्रथम अपायका चले जाने रूप अतिशय अर्थ होता है पराकाष्ठा या चरम सीमा । सब दोषोका सदाकेलिए हट जाना अपायका चले जाने रूप प्रथम अतिशय है । सब अपाय अर्थात् बुराई की जड दोष है । उनकेहटे बिना आगेकेअतिशय नहीं हो सकते । दोषोकेहटनेपर अनन्तज्ञान प्रकट होनेसे सर्वज्ञ हाते हैं यह ज्ञानतिशय है । सर्वज्ञ होनेपर सब उनकी पूजा करते हैं यह पूजातिशय है । इसीसे

उन्हे अर्हत कहा जाता है । तब उनकी दिव्यध्वनि खिरती है जिसे समवसरणमे उपस्थित सब जीव अपनी-अपनी भाषामे समझ लेते है । इस तरह सच्चे आप्तके तीन लक्षण है--वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशिता ॥१४॥

आगे मुमुक्षुओको सच्चे आप्तकी सेवा करनेकेलिए प्रेरित करते है--

जो पूर्वजन्ममे किये गये तत्तवाभ्याससे उत्पन्न हुए ज्ञानकेद्वारा परापदेशकेबिना स्वयं मोक्षमार्गको जानकर मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मरूप घातिया कर्मोंको नष्ट करके सस्त लोकालोकवर्ती पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानता है और उसी क्षणमे उदयमे आये तीर्थकर नामक पुण्य कर्मके उदयसे खिरनेवाली दिव्यध्वनिके द्वारा अत्यन्त निष्कामभावसे भव्यजीवोको जीवादि तत्त्वका उपदेश देता है, मोक्षकेइच्छुक भव्यजीवोको उस भगवान परम आप्तकी आराधना करनी चाहिए ॥१५॥

रजोनीहारद्यावृत्तार्थज्ञानस्येव तदपगम इति । तत्साधन यथा, दोषावरणे क्वचिन्निर्मूल प्रलयमुपव्रजतः प्रकृष्यमाणहानित्वात् । यस्य प्रकृष्यमाणहानिः स क्वचिन्निर्मूल प्रलयमुपव्रजति, यथा अग्निपुटपाकापसारितकिट्टकालिकाद्यन्तरडबहिरडमलद्वयत्मनि हेम्नि मल इति, निर्हासातिशयवती च दोषावरण इति । सद्य इत्यादि--केवलज्ञानोत्पत्त्यनन्तरभाविना तीर्थकरत्वा, यनामकर्मविषेषपाकेन निर्वत्तया वाचा । कामं--यथेष्टम । जगता । निरीहः--शासनत्फलवाच्छरहितः तत्रिमित्मोहप्रक्षयात् । भगवान्, इन्द्रादीना पूज्यः ॥१५॥

विशेषार्थ--आप्त कैसे बनता है यह यहाँ स्पष्ट किया है । पूर्वजन्ममे तत्त्वाभ्यासपूर्वक सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिया मनुष्य ही केवली या श्रुतकेवलीकेपादमूलमे तीर्थकर नामक कर्मका बन्ध करता है । कहा है--

प्रथमोपशम सम्यक्त्वमे या द्वितीयोपशम, क्षायिक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्वमे स्थित कर्म भूमिज मनुष्य अविरत सम्यग्दृष्टिसे लेकर चार गुणस्थानोमे कवली या श्रुतकेवलीकेनिकट तीर्थकर नामक कर्मके बन्धको प्रारम्भ करता है ।

उसकेबाद मरण करके देवगतिमे जाता है । यदि पहले नरककी आयुबन्ध कर लेता है तो नरकमे जाता है । वहाँसे आकर तीर्थकर होता है । तब स्वयं ही मोक्षमार्गको जानकर दीक्षा लेकर तपस्याकेद्वारा चार घातिकर्मोंको नष्ट करके सर्वज्ञ हो जाता है । जिस क्षणमे सर्वज्ञ होता है उसी क्षणमे पहले बाँधा हुआ तीर्थकर नामक कर्म उदयमे आता है इससे पहले उसका उदय नहीं होता । उसी कर्मके उदयमे आते ही समवसरण अष्ट महाप्रातिहार्य आदि विभूति प्राप्त होती है और उनकी वाणी खिरती है । पहले ही आये है कि वेदवादी मीमांसक पुरुषकी सर्वज्ञता स्वीकार नहीं करते, वे उसका खण्डन करते है । उनके सामने जैनाचार्याने जिन युक्तियोंसे पुरुषकी सर्वज्ञता सिद्ध की है उसका थोडा-सा परिचय यहाँ दिया जाता है--

कोई पुरुष समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष जानता है, क्योंकि समस्त पदार्थोंको जाननेका उसका स्वभाव होनेके साथ ही, जो उसके जाननेमें रूकावट पैदा करनेवाले कारण हैं वे नष्ट हो जाते हैं। जो जिसके ग्रहण करनेका स्वभाव रखते हुए रूकावट पैदा करनेवाले कारा दूर हो जाते हैं वह उसे अवश्य जानता है, जैसे रोगसे रहित आँख रूको जानती है। कोई एक विवादग्रस्त व्यक्ति समस्त पदार्थोंको ग्रहण करनेका स्वभाववाला होनेके साथ ही रूकावट पैदा करनेवाले कारणोंको नष्ट कर देता है। इस अनुमानसे पुरुषविशेषकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है। शायद मीमांसक कहे कि जीवका समस्त पदार्थोंको ग्रहण करनेका स्वभाव असिद्ध है, किन्तु उसका ऐसा कहना भी अभक्त नहीं है क्योंकि वह मानता है कि वेदसे पुरुषको समस्त पदार्थोंका ज्ञान नहीं हो सकता, जैसे अन्धको दर्पणके देखनेसे अपना मुँह दिखाई नहीं देता। तथा व्याप्ति ज्ञानके बलसे भी यह सिद्ध होता है कि पुरुष सब पदार्थोंको जान सकता है। जब कोई व्यक्ति धूमके होनेपर आग देखता है और आगके अभावमें धुआँ नहीं देखता तब वह नियम बनाता है कि जहाँ-जहाँ धुआँ होता है वहाँ-वहाँ आग होती है और जहाँ आग नहीं होती वहाँ धुआँ भी नहीं होता। इसीको व्याप्ति कहते हैं। यह व्याप्ति सर्वदेश और सर्वकालको लेकर होती है। अतः व्याप्तिका निर्माता एक

१२ पठमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादि चत्तारि ।

तित्थयरबंधपारभया णरा केवल्लिदुगते ॥--गो. कर्म., गा. ९३ ।

अथ ऐदंयुगीनाना तथाविधाप्तनिर्णयः कुतः स्यादित्यारेकायामिदमाह--

शिष्टानशिष्टात् सोत्यक्षोप्यामाद्युक्तिसंगमात् ।

पूर्वापरविरुद्धाच्च वेद्यतेद्यतनैरपि ॥१६ ॥

शिष्टानुशिष्टात्--शिष्टा आप्तोपदंशसंपादितशिक्षाविषेः स्वामिसमन्तभद्रादयस्तैरनुशिष्टाद् गुरु पर्वक्रमेणोपदिष्टात् । आगमात्--

घ्राप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना ।

भवितव्यं नियोगेन नान्यथा हयाप्तता भवेत् ॥३ [रन्त० श्रा० ५]

इत्यादिकात् । युक्तिसंगमात्--युक्त्या संयुज्यमानात् । युक्तिश्चात्र--आप्तागमः प्रमाणं स्याद यथावद वस्तुसूचकत्वादित्यादिका ।

पूर्वापरविरुद्धात्--घ्न हिस्यात्सर्वभूतानिऽ इति घ्यज्ञार्थं पशवः स्वयमेव स्वयंभुवाऽ इत्यादिवत् (न) पूर्वापरविरोधसहितात् । अद्यतनैः--सांप्रतिकैः श्रेयोर्थिकैः ॥१६॥

तरहसे सर्वदेश और सर्वकालका ज्ञाता होता है तभी तो वह इस प्रकारकी व्याप्ति बनाता है। इस व्याप्तिज्ञानसे सिद्ध है कि पुरुष सबको जान सकता है। केवल स्पष्ट रूपासे प्रत्यक्ष जाननेमें विवाद रहता है। सो उसमें दोष और आवरणका हट जाना ही कारण है। जैसे धूल, बर्फ आदिसे ढके हुए पदार्थोंके ज्ञानमें धूल, बर्फ आदिका हट जाना ही कारण है। दोष और आवरणके दूर हो जानेका साधन

इस प्रकार किया जाता है--किसी व्यक्ति विशेषमें दोष और आवरण जडमूलसे नष्ट हो जाते हैं क्योंकि उनकी हानि प्रकृष्यमाण है--बढती जाती है । जिसकी हानि बढती जाती है वह कही जडमूलसे नष्ट हो जाता है जैसे अग्निमें तपानेसे सोनेमें-से कीट आदि अन्तरंग मल और कालिमा आदि बहिरंग मल नष्ट हो जाते हैं । दोष और आवरण भी क्षीण होते-होते एकदम क्षीण हो जाते हैं इस प्रकार पुरुषकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है । स्वामी समन्तभद्रने कहा है--

किसी व्यक्तिमें दोष और आवरणकी हानि पूरी तरहसे होती है क्योंकि वह तरतम भावसे घटती हुई देखी जाती है । जैसे स्वर्णपाषाणमें बाह्य और अभ्यन्तर मलका क्षय हो जाता है । [विशेषके लिए देखो--अष्टसहस्री टीका] ॥१५॥

इसपर शंका होती है कि आजके युगके मनुष्य इस प्रकारके आप्तका निर्णय कैसे करे ? उसका समाधान करते हैं--

यद्यपि आप्तता अतीन्द्रिय है चक्षु आदिके द्वारा देखी नहीं जा सकती, फिर भी आप्तके उपदेशसे जिन्होंने विशिष्ट शिक्षा प्राप्त की है ऐसे स्वामी समन्तभद्र जैसे शिष्ट पुरुषोंके द्वारा गुरु परम्परासे कहे गये, और युक्तिपूर्ण तथा पूर्वापर अविरुद्ध आगमसे आजकलके मनुष्य भी परम आप्तको जान सकते हैं ॥१६॥

विशेषार्थ--अपने कल्याणके अर्चुक आजके भी मनुष्य आगमसे आप्तका निर्णय कर सकते हैं । आगमके तीन विशेषण दिये हैं । प्रथम तो वह आगम ऐसा होना चाहिए जो गुरु परम्परासे प्राप्त उपदेशके आधारपर समन्तभद्र जैसे आचार्योंके द्वारा रचा हो इनके बिना आप्त नहीं हो सकती ।

३ दोषावरणयोर्हानिर्निशेषास्त्यतिशयात् ।

क्वचिद यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥--आप्ती., श्लो. ४ ।

यतो वचसो दुष्टत्वादुष्टत्वे तथाविधाश्रयवशाद् भवतस्ततः घशिष्टानुशिष्टातड इत्युक्तमत एवेदमाह--

विशिष्टमपि दुष्ट स्याद् वचो दुष्टाशयाश्रयम् ।

धनाम्बुव्रत्तेदेवोच्चैर्वन्ध स्यात्तीर्थगं पुनः ॥१७॥

आयशः--चित्माधरश्च । तीर्थग--अदुष्टचित्तः पुमान् पवित्रदेशश्च तीर्थं तदाश्रयम् । ॥१७॥

अथ वाक्यस्य यत्र येन प्रामाण्यं स्यात्तन्न तेन तक्तथयति--

दृष्टैर्धेयक्षतो वक्यमनुमेयेनुमानतः ।

पूर्वापरविरोधेन परोक्षे च प्रामाण्यताम् ॥१८॥

दृष्टे--प्रत्यक्षप्रमाणग्रहणयोग्ये । प्रामाण्यता--प्रमाण क्रियताम् ॥१८॥

दूसरा विशेषण दिया है कि वह आगम युक्ति संगत हो। जैसे आप्तस्वरूपके प्रथम श्लोकमें ही कहा है-

जैसाका तैसा वस्तुस्वरूपका सूचक होनेसे आप्तकेद्वारा कहा गया आगम प्रमाण होता है। अतः जो यथावद वस्तुस्वरूपका सूचक है वही आगम प्रमाण है। तीसरा विशेषण है, उसमें पूर्वापर अविरोध कथन होना चाहिए। जैसे स्मृतिमें कहा है घ्न हिंसा सर्वभूतानिङ्--सब प्राणियोंकी हिंसा नहीं करना चाहिए। और उसीमें कहा है--

ब्रह्माजीने स्वयं यज्ञके लिए ही पशुओंकी सृष्टि की है। छ इस प्रकारके पूर्वापर विरोध वचन बतलाते हैं कि उनका रचयिता कैसा व्यक्ति होगा। दोषसहित या दोषरहित वक्ताके आश्रयसे ही वचनमें दोष या निर्दोषपना आता है। अतः आगमसे वक्ताकी पहचान हो जाती है ॥१६॥

आगे उसीको कहते हैं--

जैसे गंगाजलकी वर्षा करनेवाले मेघका जल पथ्य होते हुए भी दूषित स्थानपर गिरकर अपथ्य हो जात है वैसे ही आप्तकेद्वारा उपदिष्ट वचन भी दर्शनमोहके उदयसे युक्त पुरुषका आश्रय पाकर श्रद्धाके योग्य नहीं रहता। तथा जैसे मेघका जल पवित्र देशमें पवित्र हो जाता है वैसे ही आप्तकेद्वारा उपदिष्ट वचन सम्यग्दृष्टि पुरुषका आश्रय पाकर अत्यन्त पूज्य हो जाता है ॥१७॥

विशेषार्थ--उपर कहा था कि वचनकी दुष्टता और अदुष्टता वचनके आश्रयभूत पुरुषकी दुष्टता और अदुष्टतापर निर्भर है। यदि पुरुष कुलुषित हृदय होता है तो अच्छा वचन भी कलुषित हो जाता है। अतः आप्तकेद्वारा उपदिष्ट वचन भी मिथ्यादृष्टिकी व्याख्याके दोषसे दूषित हो जाता है। अतः आगमके प्रमाणका भी निर्णय करना चाहिए। आगम या वचनके प्रामाण्यका निर्णय विभिन्न प्रकारसे किया जाता है ॥१७॥

जहाँ जिस प्रकारसे वाक्यकी प्रमाणता हो वहाँ उसी प्रकारसे उसे करना चाहिए। ऐसा कहते हैं-

-

प्रत्यक्ष प्रमाणसे ग्रहण योग्य वस्तुके विषयमें वाक्यको प्रत्यक्षसे प्रमाण मानना चाहिए। अनुमान प्रमाणसे ग्रहण योग्य वस्तुके विषयमें वाक्यको अनुमानसे प्रमाण मानना चाहिए। और पराक्ष वस्तुके विषयमें वाक्यको पूर्वापर अविरोधसे प्रमाण मानना चाहिए ॥१८॥

६ ष्आप्तागमः प्रमाण स्याद्यथावदवस्तुसूचकःङ्--आप्तस्वरूप, १ श्लो. ।

७ यज्ञार्थं पशवः स्वयमेव स्वयंभुवा । --मनुस्मृति, ५।३९।

अथ आप्तानाप्तोक्तवाक्ययोर्लक्षणमाह--

एकवाक्यतया विष्वग्वर्तते सार्हती श्रुतिः ।

क्वचिदिव केनचिद धूर्ता वर्तन्ते वाकक्रियादिना ॥१९॥

एकवाक्यतया--एकादृशार्थप्रतिपादकत्वेन । विष्वक--सिध्दान्ते कर्ते काव्यादौ च । कचि--
नियतविषये । धूर्ताः--प्रतारणपराः । वर्तन्ते--जीवन्ति ॥१९॥

अथ जिनवाक्यहेतुप्रतिघातशडा प्रत्याचष्टे--

जिनोक्ते वा कुतो हेतु बाधगन्धोपि शंक्यते ।

रागादिना विना को हि करोति वितथं वचः ॥२०॥

जिनः--रागादीना जेता । यत्र तु रागादयः स्युस्तन्न वचसो वैतथ्यं संभवत्येव । तदुक्तम--

विशेषार्थ--परस्पर सापेक्ष पदोके निरपेक्ष समुदायको वाक्य कहते हैं । यदि वाक्यका विषय प्रत्यक्षगम्य हो तो प्रत्यक्षसे जानकर उस कथनको प्रमाण मानना चाहिए । यदि वाक्यका विषय अनुमान प्रमाणके द्वारा ग्रहण करनेके योग्य हो तो साधनके द्वारा साध्यको जानकर उसे प्रमाण मानना चाहिए । यदि वह परोक्ष हो, हम लोगोके प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणसे ग्रहणसे अयोग्य अतीन्द्रिय हो तो उस कथनको आगे पीछे कोई विरोध कथनमे न हो तो प्रमाण मानना चाहिए ॥१८॥

आगे आप्त और अनाप्तकेद्वारा कहे गये वाक्योकेलक्षण कहते हैं--

जो सिध्दान्त, तर्क, काव्य आदि सब विषयोमे एक रू पसे अर्थका कथन करता है वह अर्हन्त देवके द्वारा उपदिष्ट प्रवचन है । क्योकि दूसरोको धोखा देनेमे तप्र धूर्त लोग जिन वचनकेकिसी नियत विषयमे किसी नियत वचन, चेष्टा और वेष आदिकेद्वारा प्रवृत्त होते हैं ॥१९॥

विशेषार्थ--ग्रन्थकार पं. आशाधरजीने विक्रम संवत् १३०० मे इसकी टीकाको पूर्ण किया था । उस समय तक भट्टारक परम्परा प्रवर्तित हो चुकी थी । उन्होने किन धूर्तोकी ओर संकेत किया है यह उन्होने स्पष्ट नहीं किया । फिर भी उनकेइस कथनसे ऐसा लगता है कि जिनवचनोमे भी विपर्यास किया गया है । भट्टारक युगमे कुछ इस प्रकारके ग्रन्थ बनाये गये जो तथोक्त धूर्तोकी कृतियाँ हैं । सच्चे जिनवचन वे ही हैं जो सर्वत्र एकरू पताको लिये हुए होते हैं चाहे सिध्दान्त-विषयक ग्रन्थ हो, या तर्क विषयक ग्रन्थ हो या कथा काव्य हो उनमे जिनवचनोकी एकरू पता होती है । यही उनक प्रमाणिकताका सूचक है । वीतरागताका पोषण और समर्थन ही जिनवचनोकी एकरू पता है । यदि किसी आचार्य-प्रणीत पुराणादिमे प्रसंगवश रागवर्द्धक वर्णन होता भी है तो आगे ही रागकी निस्सारता भी बतला दी जाती है । यदि कही पापसे छुड़ानेके लिए पुण्य-संचयकी प्रेरणा की गयी है तो आगे पुण्यसे भी बचनेकी प्रेरणा मिलती है । अतः प्रत्येक कथनका पौवापर्य देखकर ही निष्कर्ष निकालना उचित होता है ॥१९॥

आप्तोक्त वचनमे युक्तिसे बाधा आनेकी आशंकाका परिहार करते हैं--

अथवा जिनभगवानके द्वारा कहे गये वचनमे युक्तिसे बाधा आनेकी गन्धकी भी शंका क्यो की जाती है ? क्योकि राग, द्वेष और मोहकेबिना मिथ्या वचन कोन कहता है अर्थात कोई नहीं कहता ॥२०॥

रागाद्वा द्वेषाद्वा मोहाद्वा वाक्यमुच्चे वितथम् ।

यस्य तु नैते दाषास्तस्यानृतकारण नास्ति ॥६ [आप्तस्वरूप ४]

गन्धः--लेशः ॥२०॥

अथ रागाद्युपहतानामाप्ता प्रतिक्षिपति--

ये रागादिजिताः किञ्चिज्जानन्ति जनयन्त्यपि ।

संसारवासनां तेपि यद्याप्ताः किंठकै कृतम् ॥२१॥

किं ठकैकृत येन तेप्याप्तत्वेन न प्रतिपद्यन्त इति सामर्थ्याद् गम्यते ॥२१॥

अथ आप्ताभासानामुपेक्षणीयतोपायमुपदिशंति--

विशेषार्थ--जो राग आदिको जी लेता है उसे जिन कहते हैं । अतः रागादिके जेता जिनके वचनोमे मिथ्यापना होना सम्भव नहीं है । ऐसी दशामे उनके वचनोमे युक्तिसे बाधा आ नहीं सकती । हॉ, जहाँ रागादि होते हैं वहाँ वचन मिथ्या होते ही हैं । कहा भी है--

राग से, अथवा द्वेष से, अथवा मोहसे झूठा वचन काह जाता है । जिसमे ये दोश नहीं हैं उसके इ ठूट बोलनेका कोई कारण नहीं है ।

जो राग आदिसे ग्रस्त है उनकी आप्तताका निषेध करते हैं--

जो राग-द्वेष-मोहसे अभिभूत होते हुए थोडा-सा ज्ञान रखते हैं तथा संसारकी वासनाको--स्त्री-पुत्रादिकी चाहके संस्कारको पैदा करते हैं, वे भी यदि यथार्थ वक्ता माने जाते हैं तो ठगोने ही क्या अपराध किया है, उन्हें भी आप्त मानना चाहिए ॥२१॥

विशेषार्थ--ग्रन्थकारने अपनी टीकामे ठकका अर्थ खारपट किया है । आचार्य अमृतचन्द्रने इन खारपटिकोका मत इस प्रकार कहा है--

थोडे-से धनके लोभसे शिष्योमे विश्वास पैदा करनेके लिए दिखलानेवाले खारपटिकोके तत्काल घडेमे बन्द चिडियाके मोक्षकी तरह मोक्षका श्रधदान नहीं करना चाहिए"इस कथंन से ऐसा ज्ञात होत है कि खारपटिक लोग थोडे-से भी धनके लोभसे मोक्षकी आशां दिलाकर उसे मार डालते थे । जैसे घडे मे चिडिया बन्द है वैसे ही शरीरमे आत्मा बन्द है । और जैसे धडेका फोडनेपर चिडिया मुक्त हो जाती है वैसे ही शरीरको नष्ट कर देनेपर आत्मा मुक्त हो जाती है । ऐसा उनका मत प्रतीत होता है । ऐसे ठगोसे सावधान रहना चाहिए । धर्ममार्गमे भी टगीका व्यापार चलता है ॥२१॥

आप्ताभासोकी उपेक्षा करनेका उपदेश देते हैं--

९ धनलवपिपासिताना विनेयविशवसनाय दर्शयताम ।
झटिति घटचटकमोक्ष श्रद्धेय नैव खारपटिकानाम ॥

योर्धाडे शूलपाणिः कलयति दयिता मातृहा योति मांस,
पुस्ख्यातीक्षाबलाडद्यो भजति भवरसं ब्रम्हवित्तपरो यः ।
यश्च स्वर्गादिकामः स्यति पशुमकृपो भ्रातृजायादिभाजः,
कानीनाद्याश्च सिध्दा य इह तदवधिप्रेक्षया ते ह्युपेक्ष्याः ॥२२॥

शूलस्त्रीयोगाद क्षेपरागसंप्रत्ययेन शम्भूराप्तत्वनिषेधः । मातृहा इत्यादि--प्रसूतिकाले
निजजननीजठरविदारणात्सुगतस्यातिनिर्दयत्वम् ।

घमांसस्य मरण नास्ति नास्ति मांसस्य वेदना ।
वेदनामरणाभावत को दोषो मांसभक्षणे ॥३ []

इति युक्तिबलाच्च मांसभोजनेन रागः सिध्दयन्नप्ततां व्याहन्ति । पुमित्यादि--पुमान--पुरु षः,
स्,यातिः--प्रकृतिः, तयोरीक्षा--ज्ञानं तदवष्टम्भाद्विषयसुखसेविनः सां,यस्य सुतरामा[मना-]प्तत्वम् । तथा
च तन्मतम्--

हस पिब लस खाद त्वं विषयानुपजीव मा कृथाः शडाम ।
यदि विदितं कपिलमंत प्राप्स्यसि सौख्यं च मोक्ष च ॥३ []

तथा--

पच्छविशतितत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे रतः ।
शिखी मुण्डी जटी वापि मुच्ये नात्र संशयः ॥ []

जो महादेव अपने शरीरके आघे भागसे अपनी पन्ती पार्वतीको और हाथमे त्रिशूल धारण करते है,
तो बुध्द मांस खाता है और जिसने जन्मसमय अपनी माताका घात किया, जो सांख्य प्रकृति और
पुरु षके ज्ञानके बलसे विषयसुखका सेवन करता है, जो वेन्ती ब्रम्हको जानते हुए विषयसुखमे मग्न
रहता है, जो याज्ञिक स्वर्ग आदिकी इच्छासे निर्दय होकर पशुधात करता है, तथा जो व्यास वगैराहँ
भाईकी पन्ती आदिका सेवन करनेवाले प्रसिध्द है उन सबके शास्त्रोको पढकर तथा उनका विचार करके
उनकी उपेक्षा करनी चाहिए, अर्थात् न उनसे राग करना चाहिए और न द्वेष करना चाहिए ॥२२॥

विशेषार्थ--महादेव त्रिशूल और पार्वतीको धारण करते है अतः द्वेष और रागसे सम्बध्द होनेके
कारण उनके आर्प्त होनेका निषेध किया है । बुध्दने माताकी योनिसे जन्म नही लिया था क्य़ाकि योनि
गन्दी होती है अतः माताका उदर विदारण करके जन्मे थे इसलिए बुध्द अतिनिर्दय प्रमाणित होते है ।
तथा उनका कहना है--

मांसका न तो मरण होता है और न मांसको सुख-दःखका अनुभूत होता है । अतः वेदना और मरणके अभावमे मांस भक्षणमे कोई दोष नहीं है ।

इस युक्तिके बलसे उनका स्वयं मरे पशुका मांस भोजनमे राग सिद्ध होता है अतः वे भी आप्त नहीं हो सकते । सांख्यका मत है--

हंस, खा, पी, नाच-कूद, विषयोको भोग । किसी प्रकारकी शंका मत कर । यदि तू कपिलके मतको जानता है तो तुम्हे मोक्ष और सुख प्राप्त अवश्य होगा ।

तथा--

१. हस पिब लल मोद नित्यं विषानुभुच कुरु च मा शडकाम ।
यदि विदित ते कपिलमतं तत्प्राप्स्यसे मोक्षसौख्यं च ॥इसां. का. माटर. पृ ५३ ।
२. तथा च उक्तं पच्छशिखेन प्रमाणवाक्यम--पचविशंति तत्त्वज्ञो. . . । तत्त्वा०, पृ. ६१

ब्रह्मत्यादि--ब्रह्म आनन्दैकरूप तत्त्व वेत्ति अथ च तप्री भवरसभजनप्रधानो वेदान्ती कथमाप्तः परीक्षकैर्लक्ष्यते । तथा च केनचित्तत्प्रफलच्च (?)

संध्यावन्दनवेलाया मुक्तोहमिति मन्यसे ।

खण्डलडुकवेलायां दण्डमादाय धावसि ॥ड []

यश्चेत्यादि--श्वेतमजमालभेत स्वर्कामः इत्याद्यपौरुषेयवाक्यग्रहावेशज्ञत विषतृणष्णातरलितमनसः पशुहिसानन्दसान्द्रस्य याज्ञिकस्य कःसुधीराप्ततां श्रद्धधीत । तथा च मुरारिसूक्तं विश्वमित्राश्रमवर्णनप्रस्तावे--

तत्तादृक तृणपूलकोनपयनक्लेशाच्चिरद्वेषिभि-

मेध्या तत्सतरी विहस्य वटुभिः सोल्लुण्ठमालभ्यते ।

अप्येष प्रतनूभवत्यतिथिभिः सोच्छवासनासापुटै-

रापीतो मधुपर्कप्राकरसुरभिः प्राग्वंशजन्मानिलः ॥

[अनर्धराधव, अंक २, श्लो. १४]

स्यति--हिनस्ति । कानीनाद्याः--कन्याया अपत्यं कानीनो व्यासमुनिः । स किल भ्रातुर्जायाव्यवायपरवान प्रसिद्धः । तथा च पठन्ति--

कानीनस्य मनुः स्वबान्धववधूवैध्वविध्वसिनो

नप्तारः किल गोलकस्य तनयाः कुण्डाः स्वयं पाण्डवाः ।

ते पचपि समानजानय इति ख्यातास्तदुत्कीर्तनात्

पुण्यं स्वस्त्ययं भवेद्यदिने धर्मस्य सूक्ष्मा गतिः ॥ड []

जो सांख्याके पचीस तत्त्वोको जानता है वह किसी भी आश्रममे आसक्त हो, चोटी रखता हो, या सिर मुँडाता हो, या जटाजूट रखता हो, अवश्य ही मुक्त हो जाता है इसमे संशय नहीं है ।

वेदान्तीके प्रति किसीने कहा है--

हे वेदान्ती ! सन्ध्यावन्दनके समय तो तू अपनेको मुक्त मानता है (अतः सन्ध्यावन्दन नहीं करता) । किन्तु खोंडके लड्डूके समय दण्ड लेकर दौडता है (कही लड्डू बाँटे जाते हैं तो सबसे पहले पहुँचता है) ।

श्रुतिमे काह है--ध्रुवेतमजमालभेत स्वर्गकामः । स्वर्गके इच्छुकको सफेद बकरे की बलि करनी चाहिए । यह अपौरुषेय वेदवाक्य है । इस प्रकारके आग्रहके वश होकर याज्ञिक पशुंहिमसामे आनन्द मानता है । उसे कौन बुद्धिमान आप्त मान सकता है । मुरारि मिश्रने विश्वमित्रके आश्रमका वर्णन करते हुए कहा है--

ध्मुनिबालकोको गायोके लिए घासके गठठर लानेमे जो कष्ट होता उसके कारण वे गायोसे चिरकालसे द्वेष रखते । अतः अतिथिके स्वागतके लिए दो वर्षकी पवित्र गायको हँसकर बडे उल्लासके साथ वे मारते । उससे मधुपर्कबनता । हवनके स्थानसे पूरबकी ओर बने घरसे निकली हुई वायु को, जो मधुपर्कके पाकसे सुगन्धित होती, अतिथिगण दीर्घ उच्छ्वासके साथ अपनी नाकसे पीते थे--सूँधते थे^f

व्यास मुनिने अपने भाईकी पत्नीके साथ सम्भोग किया यह प्रसिद्ध है । कहा है--

ध्व्यासजीका जन्म कन्यासे हुआ था इसलिए उन्हे कानीन कहते हैं । उन्होने अपने भाईकी बहूके वैधव्यका विध्वंस किया था अर्थात् उसके साथ सम्भोग करके सन्तान उत्पन्न

तथा वसिष्ठोमालाख्यां चण्डालकन्या परिणीयोपभुजानो महर्षिरु ढिमूढवान । एवमन्येपि बहवस्तच्च्दास्त्रदृष्टा प्रतीयन्ते । यन्मनुः--

ध्रुक्षमाला वषिष्टेन प्रकृष्टाधमयेनिजा ।

शांगी च मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम ॥ []

घृताश्चान्याश्च लोकेस्मिन्नवकृष्टप्रसूतयः ।

उत्कर्ष योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भृतृगुणैः शुभैः ॥ [मनु. १।२३-२४]

तत्कृचे च धर्मोपदेशकः पेक्षावतां समाश्वासः । तथा च पठन्ति--

ज्ञानवान्मृग्यते कश्चित्तदुक्तप्रतिपत्तये ।

अज्ञोपदेशकरणे विप्रलम्भनशडकिभिः ॥ [प्रमाणवा. १।३२]

अवधिः--शास्त्रम ॥२२॥

अथ युक्त्यनुगृहीतपरमारगमागधिगतपदार्थव्यवहारपरय मिथ्यात्ववियमाविष्करोति--

यो युक्त्यानुगृहीतयाप्त वचनज्ञप्त्यात्मनि स्फारिते-
ष्वर्थेषु प्रतिपक्षलक्षितसदाद्यानन्त्यधर्मात्मसु ।
नीत्याक्षिप्तविपक्षया तदविनाभूतान्यधर्मोत्थया
धर्म कस्यचिदर्पित व्यवहरत्याहन्ति सोन्तस्तमः ॥२३॥

की थी। उने पौत्र पाण्डव थे। पाण्डव स्वयं जारज थे। उनकी उत्पत्ति राजा पाण्डुसे न होकर देवोसे हुई थी। फिर भी देवोके वरदानसे वे पाँचो समान जन्मवाले कहे गये। दिनो दिन उनका कल्याण हुआ। टीक ही है, धर्मकी गति सूक्ष्म है। उसका समझमे आना कठिन है"वशिष्टने अक्षमाला नामक चण्डालकी कन्यासे विवाह करके उसका उपभोग किया और महर्षि कहलाये। इसी तरह उनके शास्त्रके अनुसार और भी बहुत-से हुए। मनु महाराजने कहा है--

ध्रत्यन्त नीच योनिमे उपन्न हुई अक्षमाला वशिष्टसे तथं शार्डी मदपालसे विवाह करके पूज्य हुई । इस लोकमे ये तथा अन्य नीच कुलमे उत्पन्न हुई स्त्रियाँ अपने-अपने पतिके शुभ गुणोके कारण उत्कर्षको प्राप्त हुई^६

किन्तु सच्चे आप्तके लिए बुद्धिमानोको धर्मोपदेशका ही सहारा है। कहा है--

घ्यदि अज्ञ मनुष्य उपदेश दे तो उससे टगाये जानेकी आशंका है। इससे मनुष्य आप्तके द्वारा कही गयी बातोको जाननेके लिए किसी ज्ञानीकी खोज करते है^६

युक्तिसे अनुगृहीत आगमके द्वारा पदार्थोको जानकर जो उनका व्यवहार करनेमे तपत्र रहते है वे मिथ्यात्वपर विजय प्राप्त करते है, यह कहते है--

जो युक्ति द्वारा व्यवस्थित आप्तवचनोके ज्ञानसे आत्मामे प्रकाशित पदार्थोमे, जो कि प्रतिपक्षी धर्मोसे युक्त सत आदि अनन्त धर्मोको लिये हुए है, प्रतिपक्षी नयका निराकरण न करनेवाले तथं विवक्षित धर्मके अविनाभावी अन्य धर्मोसे उत्पन्न हुए नयके द्वारा विवक्षित किसी एक धर्मका व्यवहार करता है वह अपने और दूसरोके मिथ्यात्व या अज्ञानका विनाश करता है ॥२३॥

युक्ता ध्रआप्तवचनं प्रमाण दृष्टेष्वारविरु ध्रत्वातड, सर्वमनेकान्तात्मक सत्त्वादित्याख्याया । अनुगृहीतया-- व्यवस्थितया आप्तवचनज्ञप्त्या ।

ध्रजीवो ति हवदि चेदा उवओगविसेसिदो पडू कत्ता ।

भोक्ता य देहमेत्तो ण हु मुत्तो कम्मसंजुत्तो ॥ड [पच्चास्ति., गा. २७]

इत्याद्यागमज्ञानेन । वचनमुपलक्षणं तेन आप्तसंज्ञादिजनितमपि ज्ञानमागम एव । तथं च सूत्रमड

ध्रआप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः । इतिड [पीरक्षामुख ३।९५ ।]

स्फारितेषु--स्फुरदरु पीकृतेषु । अर्थेषु--जीवपदगल-धर्माधर्माकाशकालेषु पदार्थेषु प्रतीत्यादि । सत--सत्ता भाव इत्यर्थः । भावप्रधानोऽ निर्देशः । सत आदियेषु नित्यभेदादीना धर्माणा ते सदादयः । प्रतिपक्षा विरु ध्दधर्मा यथाक्रममसत्क्षणिकभेदादयः प्रतिपक्षलक्षितसदाद्यानन्त्यधर्माः, त एवात्मा स्वरु प येषा ते तथोक्ताः । नीत्या--नीयते परिच्छिद्यते प्रमाणपरिगृहीतार्थकदेशोनयेति नीतिर्नयः स्वार्थकदेशव्यवसायात्माको बोध इत्यर्थः ।

विशेषार्थ--आप्त पुरु षके वचनोसे होनेवाले ज्ञानको आगम कहते है । परीक्षामुख सूत्रे ऐसा ही कहा है । जैसे--

आत्मा जीव है, चेतनस्वरु प है, उपयोगसे विशिष्ट है, प्रभु है, कर्ता है, भोक्ता है, शरीरके बराबर है, अमूर्तिक है किन्तु कर्मसे संयुक्त है । छ

इस आप्त वचनसे होनेवाले ज्ञानको आगम कहते है । यहाँ घ्वचनड शब्द उपलक्षण है । अतः आप्त पुरु षके हाथके संकेत आदिसे होनेवाले ज्ञानको भी आगम कहते है । वह आगम युक्तसे भी समर्थित होना चाहिए । जैसे, आप्तका वचन प्रमाण है क्योंकि वह प्रत्यक्ष और अनुमानप्रमाण आदिके अविरु ध्द है । या सब वस्तु अनेकान्तात्मक है सत होने से । इन युक्तियोंसे आगमकी प्रमाणताका समर्थन होता है । आगममे छह द्रव्य कहे है--जीव, पुदगल, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश और काल । एक-एक पदार्थमे अनन्त धर्म होते है । और वे धर्म अपने प्रतिपक्षी धर्म साथ होते है । अर्थात् वस्तु सत भी है और असत भी है, नित्य भी है और अनित्य भी है, एक भी है और अनेक भी है आदि । यह अनन्त धर्मात्मक वस्तु प्रमाणका विषय है । प्रमाणसे परिगृहीत पदार्थके एक देशको जाननेवाला ज्ञान नय है । कन्तु वह नय अपने प्रतिपक्षी नयसे सापेक्ष होना चाहिए । जैसे नयके मूल भेद दो--द्रव्यार्थिक है और जो नय पर्यायार्थिक नय । जे नय द्रव्यकी मुख्यतासे वस्तुको ग्रहण करता है वह द्रव्यार्थिक है और जो नय पर्यायकी मुख्यतासे वस्तुको ग्रहण करता है वह पर्यायार्थिक नय द्रव्यार्थिक है और जो नय पर्यायकी मुख्यतासे वस्तुको ग्रहण करता है वह पर्यायार्थिक नय द्रव्यार्थिक सापेक्ष होनेसे सम्यक होता है । क्योंकि वस्तु न केवल द्रव्यरु प है और न केवल पर्यायरु प है किन्तु द्रव्यपर्यायरु प है । उस द्रव्यपर्यायरु प वस्तुके द्रव्यांश या पर्यायाशको ग्रहण करनेवाला द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय है । यदि द्रव्याशग्राही द्रव्यार्थिक नय अपने विषयको ही पूर्ण वस्तु मानता है तो वह मिथ्या है । इसी तरह पर्यायाशका ग्राही पर्यायार्थिक नय यदि अपने विषयको ही पूर्ण वस्तु कहता है तो वह भी मिथ्या है । कहा भी है--

प्रतिपक्षका निराकरा न करते हुए वस्तुके अंशके विषयमे जो ज्ञाताका अभिप्राय है उसे नय कहते है । और जो प्रतिपक्षका निराकरण करता है उसे नयाभास कहते है ।

[नयके सम्बन्धमे विशेष जानने लिए देखे तत्त्वा. श्लोक वा., १।६]

घञ्जातुरतिराकृते प्रतिपक्षो वस्त्वंशस्यास्त्यभिप्रायः ।

यः स उयोत्र नायाभो निराकृतप्रत्यनीकस्तु^६ []

उक्त च तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकारे--[१।३।२]

घसधर्मणैव साध्यस्य साधमर्यादविरोधतः ।

स्याद्वादप्रविभक्तार्थविषयज्जुको नयः ॥ [आप्तमी. १७६]

तथा श्री मदकलडकदेवैरप्युक्तम--

उपयोगो श्रुतस्य द्वौ स्याद्वादनयसंज्ञितौ ।

स्याद्वाद्वः सकलादेशो नयो विकलसंकथा ॥ [लधीयस्त्रय ६२]